'मास्टर' मणिमालायाः २६३ संख्यको मणिः (ज्यौतिषविभागे ५२)

॥ श्रीः ॥

कूपाराममीमांसा

अर्थात्

बृहत्-कूपारामपद्धतिः ।

'विजयलक्ष्मी'नाम्निसोदाहरणभाषाटीकया समलंकृता ।

रचयिता—

दैवज्ञभूषण पं० श्रीमातृप्रसादपाण्डेयः

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस-१

मूल्यम् ॥=)

श्रीः

कूपाराममीमांसा
अर्थात्
बृहत्-कूपारामपद्धतिः ।

'मिर्जापुर'मण्डलान्तर्गत-'आही'-ग्रामनिवासिना श्रीमज्ज्यौतिषीन्द्रमुकुट-
मणि-पं० श्रीछत्रधरपाण्डेयसरयूपारीणसूनु-दैवज्ञभूषण-
पं० श्रीमातृप्रसादपाण्डेयकृतया 'विजयलक्ष्मी'-
नामिकया सोदाहरणभाषाटीकया
समलङ्कृता ।

—०—

सा च—
'देवरिया'मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति काशी) वास्तव्येन
पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिणा
सम्पादिता ।

—✿—

सा च—
काशीस्थ-'संस्कृत बुकडिपो'-इत्यस्याऽध्यक्षैः
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः
मुद्रापयित्वा प्रकाशिता ।

—✿—

प्रथमं संस्करणम्] सन् १९५६ ई० [मूल्यम् ॥=)

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

प्रकाशकः—
बी० एन० यादव प्रोप्राइटर
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस–१

मुद्रकः—
मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,
बुलानाला, काशी।

समर्पण—

श्रीपूज्य तातचरणकमल !

उस परब्रह्म परमेश्वर के परम पूज्य वैकुण्ठ धाम में आपको यह जान
कर प्रफुल्लता हो सकती है कि जो आपने मेरे हृदयक्षेत्र पर
ज्योतिषागम आदि का अङ्कुर जमाया है उसके परिणाम-
स्वरूप हमने कई पुस्तकें पुष्पवत् आपके कर-सरो-
रुह में समर्पित किया है, अब यह "कृपा-
रामपद्धति" "विजयलक्ष्मी" नाम
की टीका से युक्त ८०वाँ सुमन
भी आपके ही कर-
कमलों में सम-
र्पित करता
हूँ ।

भवदीय वात्सल्यभाजन—

मातृप्रसाद पाण्डेय श्रौतस्मार्त ।

* विज्ञप्ति *

उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति चेह परत्र च।
तस्माज्जलाशया कार्या जनैस्तु फलकाङ्क्षिभिः॥

जल ही जीवन है। यह स्वयमेव सिद्ध है कि जल के विना जीवन सम्भव नहीं, अतः जल को जीवन कहा गया है। कहीं कहीं मरु प्रदेशों में जहाँ जल सुगमता से मिलना सम्भव नहीं, वहाँ जल को जीवन की संज्ञा दी गयी है। जल की आवश्यकता प्राचीन काल से ही रंक निवास से लेकर राजनिवास तक को पड़ती है। पूर्वकाल में भी महर्षियों से लेकर देवों तक पड़ती थी। वराहमिहिरजी ने सारस्वत मुनि के कहे हुये 'दकार्गल' को जल प्राप्ति के निमित्त प्रमुख साधन कहा—

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तदवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद् कृतैरपि मानवं वक्ष्ये॥

तथापि सारस्वतजी ने "दकार्गल" (जलविज्ञान) की रचना की आचार्य वराहमिहिरजी ने बृहत् संहिता में दकार्गल विषय का विवेचन किया। इस दकार्गल की रचना से जल प्राप्त करना सुलभ हो गया और स्थान-स्थान पर वापी, कूप, तड़ागादि जलाशय दृष्टिगोचर होते हैं। जमीन के अन्दर कहाँ पर, कितनी दूरी पर, किस प्रकार का जल है ? इसकी जानकारी इस विषय के द्वारा होती है। सभी स्थानों पर, समान दूरी पर एवं एक प्रकार का जल नहीं रहता है। इससे किस स्थान पर, कितनी दूरी पर एवं किस प्रकार का जल है इसका

विवेचन इसके 'दकार्गल' प्रकरण में किया गया है। भाँति-भाँति के वृक्षों के एवं वल्मीक को जमीन पर होने से जल-श्रोत का पता चलाया जाता है—इसके अलावा कूपचक्र तडाग-चक्र द्वारा जल प्राप्त करने की विवेचना की गयी है। जल जितना आवश्यक वस्तु है उतना ही अलभ्य भी है, इससे जल प्राप्त करने के लिये कूपादिक जलाशय बनवाने में पूर्ण विचार की आवश्यकता होती है। अतः जलाशय सम्बन्धी विचार के लिये यह दकार्गल विद्या अपना अलग श्रेय रखती है।

यों तो यह दकार्गल प्रकरण बाबाजी (लेखक) के वास्तुसारणी नामक पुस्तक में भी सङ्कलन एवं टीका करके प्रकाशित थी, परन्तु पुस्तक बड़ी होने के कारण उसका पूर्ण दिग्दर्शन सर्वसुलभ न था, अतः इसमें कुछ गूढ तत्त्वों का समावेश करके और 'विजयलक्ष्मी' नामकी टीका करके इस विषय को रचयिता ने अलग ही प्रकाशन कराया है। अतः जलाशय की इच्छा करनेवाले महाशय को इस पुस्तक का आश्रय लेना आवश्यक है। इससे जलाशय-सम्बन्धी जानकारी के निमित्त इस पुस्तक को अपनाने में रचयिता का परिश्रम सफल होगा ऐसी आशा है।

विनीत—

वागीशकान्त पाण्डेय "विशारद"

आही—कछवा,

मिर्जापुर

कूपाराममीमांसा विषयस्थ सूची-पत्र।

श्लोक सं०	विषय वृक्ष	दिशा	हाथ	चिन्ह	हाथ	शिरा (सोती जल)
१	जल-प्रशंसा					
१	शिरा					
२	एकवर्ण जल					
	फिर अनेक वर्ण					
३	दिशाधीश					
४	शिरा नाम					
५	शिरा शुभाशुभफल					
६–७	बेंत	पश्चिम	३ हाथ	सफेद मेघ	२।। हाथ	७।। हाथ जल
८	जामुन	उत्तर	२	लोहे का रंग		१० ,, जल
९–१०	जामुन	पूर्व वल्मीक		मत्स्य, पत्थल		१० ,, जल
११	गूलर	पश्चिम		सफेद सर्प	२।। हाथ	१२।। ,, जल
१२–१३	अर्जुन	उत्तर वल्मीक हो तो	३	सफेद गोहटा	२।। ,,	१७।। ,, जल
१४–१५	मेवड़ी वल्मीक युत	दक्षिण	३	रोहू सफेद मिट्टी		११। ,, जल
१६	बैर	पूर्ववल्मीक		सफेद विस्तुइआ		१५ ,, जल
१७	पलाश, बैर	पश्चिम	३	दो मुँह का सर्प	५ हाथ	१६ ,, जल
१८	बेल, गूलर	दक्षिण	३	काला मेघ		१५ ,, जल
१९–२०	बोखारा वल्मीक युत	सर्वदिशा		सफेद मिट्टी		१६ ,, जल
२१–२२	रुई	पूर्व	३	श्याम मिट्टी		
	मदार	पूर्व	३	श्याम मिट्टी		
	बड़ी मौसिरी	पूर्व	३	श्याम मिट्टी		
२३	टेशू	वायु	२	कुमुदा शिरा		१५ हाथ जल
२४	बहेड़ा	दक्षिणवल्मीक		सफेद विश्वम्भर		७।। ,, जल

श्लोक सं० विषय वृक्ष दिशा हाथ चिह्न हाथ शिरा (सोती जल)

२५–२६ बहेड़ा पश्चिम वल्मीक सफेद विश्वंभर २२॥ हाथ जल

२७–२८ कचनार ईशान में वल्मीक युत सर्प ५ हाथ २७॥ ,, जल

कुश हो, वृक्ष वल्मीक के मध्य में

२९–३० छितवन वल्मीक युत हो हरा मेघ २॥ हाथ २५ हाथ जल

३१–३२ सब वृक्ष मेढक युक्त हो उसके उत्तर नेवला ५ ,, २२॥ ,, जल

३३–३४ करञ्ज दक्षिण सर्प का बिल हो १७॥ ,, जल

३५ महुआ उत्तर सर्प का बिल हो ३७॥ ,, जल

३७ तिलक वल्मीक तथा कुश-दूर्वा युत हो पश्चिम २५ ,, जल

३८ कदम्ब सर्प बिल पश्चिम हो दक्षिण ३ हाथ पीलामेघ मिट्टी ५ हाथ २८॥। ,, जल

४१ कैंत नेवले के रंग का सर्प २५ ,, जल

४३ अश्मन्तक सर्प गृह या बैर उत्तर ६ हाथ कूर्म ५ हाथ १७॥ ,, जल

४५–४६ हरिद्रा (दारुहल्दी) उत्तर वल्मीक-पूर्व में ३, नीलसर्प ५ ,, २७॥ ,, जल

४७–४८ वीरण कोमल भूमि ५ ,, जल

दूर्वा कोमल भूमि ५ ,, जल

ब्रह्मदंडी, भारङ्गी कोमल भूमि दक्षिण २ हाथ १५ ,, जल

विधारा, त्रिवृत्ता कोमल भूमि दक्षिण २ ,, १५ ,, जल

वज्रदन्ती कोमल भूमि दक्षिण २ ,, १५ ,, जल

शूकरपादी कोमल भूमि दक्षिण २ ,, १५ ,, जल

लक्ष्मणा कोमलभूमि दक्षिण २ १५ जल

मालती ,, ,, २ १५ जल

४९ स्निग्ध ह्रस्व जल रहता है।

विस्तीर्णशाखा ,,

जर्जर रूखे पत्र जल नहीं रहता है।

५०–५१ तिलक वल्मीकयुत वा समीप हो० उत्तर ३ हाथ २२॥ हा० जल

अम्रातक ,, ,, ,, ,, २२॥ ,,

वरुण भल्लातक ,, ,, ,, ,, २२॥ ,,

श्लोक सं०	विषय वृक्ष	दिशा	हाथ	चिह्न	हाथ	शिरा (सोती जल)
	बेल	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	तिन्दुक	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	अकोल	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	पिण्डार	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	सीरीष	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	अञ्जन	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	पुरुष(फालसा)	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	वञ्जुल	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
	अतिवला(ककही)	,,	,,	,,	,,	२२॥ ,,
५२	तृण रहित भूमि पर तृण हो, तृणयुत भूमि पर तृण न हो तो वहाँ जल और घन रहता है।					
५३	कण्टक	पश्चिम	३ हाथ	घन		१६। हाथ जल
	अकण्टक	,,	३ हाथ	घन		१६। हाथ जल
५४	आघात			उत्तर शिरा		१७॥ हाथ जल
५५	एक शाखा					१५ हाथ जल
५६	फलपुष्प युतवृक्ष	पूर्व	३ हाथ	पत्थरिली मिट्टी		२० हाथ जल
५७	कण्टक वृक्ष					१७॥ हाथ जल
५८	खजूर	पश्चिम	२ हाथ			१५ हाथ जल
५९	शुद्ध भूमि पर कर्णिकार	दक्षिण	३ हाथ			१० हाथ जल
	(कठचम्पा)	,,	,,			१० हाथ जल
	पलास	,,	,,			१० हाथ जल
६०	धातृ जिसके नीचे गरम हो					१० हाथ वेगवती शिरा
६१	अन्न आदि उपजे नाश हो, भूमि पाण्डुर चिकनी हो					१० हाथ महाशिरा
६२	मरु देश की शिरा					ऊँट के ग्रीवा सदृश
६३-६४	पीलू (अखरोट) ईशान कोण					
	वल्मीक उसके	पश्चिम	४॥ हाथ	मेढक		२५ हाथ जल

श्लोक सं०	विषय वृक्ष	दिशा	हाथ	चिह्न हाथ	शिरा (सोती जल)
६५-६६	अखरोट	पश्चिम दक्षिण	वल्मीक	४।। हाथ ,,	३५ हाथ जल
६७	करीर	सर्पवास उत्तर हो, दक्षिण			५० हाथ स्वादिष्ट जल
६८	रोहित	पश्चिम	वल्मीक	३ दक्षिण	६० हाथ खारा जल पश्चिम शिरा
६९	अर्जुन	पूर्व	वल्मीक	१ मेघ सफेद मिट्टी	७० हाथ जल
७०-७१	अमिलतास	वामभाग में सर्पवास हो उससे दक्षिण		२ हाथ	७५ हाथ जल
७२-७३	रोहित, बैर एकत्र	पश्चिम		३ हाथ बिच्छू २।।हा	८० हाथ जल
७४	बैर, करीर	पश्चिम	३ हाथ		९० हाथ जल
७५	बैर, पीलू	पूर्व	३ हाथ		१०० हाथ खारा जल
७६	कंकुम करीर कंकुम बिल्व	पश्चिम	२ हाथ		१२५ हाथ
७७	वल्मीक दूर्वा तथा कुशा				१०५ हाथ मध्य वल्मीक पर
७८	कदम्ब दूर्वा वल्मीक				१२५ हाथ
७९-८०	रोहित वल्मीक के मध्य में अन्य तीन वृक्ष हो		४ हाथ	१६ अङ्गुल	२०० हाथ जल
८१	शमी बहु ग्रन्थि युत हो		५ हाथ		२५० हाथ जल
८२	पाँच वल्मीक के मध्य श्वेत				२७५ हाथ
८३	शमी पलाश	पश्चिम	५ हाथ		३०० हाथ
८४	सफेद रोहित वल्मीकयुत	पूर्व	१ ,,		३५० ,,
८५	सफेदशमीबहुकण्टकयुत	दक्षिण	१ ,,		३७५ ,,
८६	मरु देश के सदृश पहाड़ी देश में न विचारे जम्बू वेत से जो चिह्न कहा है, मरु देश में द्विगुणित				
८७-८८	जामुन निसोथ मूर्वा, शिशुमारी, सारिवा हर्रे पीपर विरुध वाराही मालकाकुन गुरुचि शूअरकन्द, माषपर्णी, व्याघ्रपद पालाश गूलर सर्प वास से युक्त हों	उत्तर	३ हाथ		१५ हाथ जल

वृक्षायुर्वेदाध्याय [२]

संग्रहकर्तृ-टीकाकार-परिचयः ।

श्री(१०८) साङ्कृत्यकुले मनीषिमुकुटो विश्वेश्वरोऽभूत्ततः,
श्री(१०६) कालीचरणोऽङ्गदर्शनबुधः सद्धर्मविज्ञस्ततः ।
श्री(६) मच्छत्रधराद्धरैकगणकान् मातृप्रसादोऽस्ति यः,
सप्ताद्रीभधराशके व्यरचयत् सा शङ्करप्रीतये ॥

श्री साङ्कृत्य गोत्र में विद्वानों के मुकुटमणि श्री विश्वेश्वर पाण्डेय हुए। उनसे षडङ्ग (वेद-वेदान्त सम्पूर्ण दर्शन) के जाननेवाले तथा धर्म के विज्ञ पूज्यवर श्री कालीचरण जी हुए। उनसे श्री छत्रधर जी हुए जिनके समान अन्य धरातल में कोई भी ज्यौतिषी नहीं हुआ। श्री छत्रधर पाण्डेय जी के पुत्र दैवज्ञ भूषण श्रीमातृप्रसाद पाण्डेय श्रौत स्मार्त जी हैं, जिन्होंने शाके १८७७ में 'कृपारामममीमांसा' का संग्रह कर 'विजयलक्ष्मी' नाम की भाषाटीका से विभूषित किए। वह श्री शङ्करजी के प्रसन्नता के लिये हो ॥

❀ श्रीहरिः ❀

कूपाराममीमांसा

अर्थात्

बृहत्कूपारामपद्धतिः

['विजयलक्ष्मी'नाम्निसोदाहरणभाषाटीकासहिता]

प्रणम्य गिरिजाकान्तं श्रीविन्ध्याद्रिनिवासिनीम् ।
वक्ष्ये दकार्गलं भव्यं प्रमोदाय द्विजन्मनाम् ॥ १ ॥

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जनोपलब्धिः ।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरा तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्था ॥ १ ॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधा विशेषात् ।
नानारसत्वं बहुवर्णतां वाऽऽगतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव च ॥ २ ॥

मैं वराहमिहिराचार्य धर्म, यश का देने वाला और जिससे जल प्राप्त हो ऐसे 'दकार्गल' को कहता हूँ। जिस प्रकार पुरुषों के शरीर में शिरा (नश) हैं उसी प्रकार भूमि में भी नस ऊपर से नीचे को गई हैं, आकाश से जल एक वर्ण एक रस वाला गिरता है, परन्तु नाना प्रकार की भूमि होने से जल भी अनेक रंग, अनेक स्वाद का होता है। इससे भूमि के समान जल का रूप और गुण समझना ॥ १–२ ॥

पुरुहूता-ऽनल-यम-नैऋत-वरुण-पवनेन्दु-शङ्करा देवाः ।
विज्ञातव्या क्रमशः पूर्वादीनां दिशांपतयः ॥ ३ ॥
दिग्पतिसंज्ञाश्च शिरा नवमीमध्ये महाशिरा नाम्नी ।
एताभ्योऽन्या शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ॥ ४ ॥
पातालादूर्ध्वशिराः शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिताश्च ।
कोणदिगुस्थानशुभा शिरा निमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥ ५ ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निऋत, वरुण, वायु, चन्द्र तथा शिव पूर्वादि आठो दिशाओं के क्रम से स्वामी हैं। शिरा (सोती) जिसदिशा से आवे, शिरा का नाम उस दिशा के स्वामी का नाम समझना, जैसे पूर्व दिशा की शिरा का नाम इन्द्र, अग्नि दिशा की शिरा का नाम अग्नि है। इसी प्रकार आगे जानना, मध्य के शिरा का महाशिरा नाम है। इससे अतिरिक्त सैकड़ों शिरा निकली हैं, नामों से विख्यात हैं। पाताल से ऊपर को शुभ शिरा निकल कर चारों दिशाओं में विद्यमान हैं ॥ ३-४-५ ॥

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिः ततश्च पश्चात् ।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥
चिह्नमपि वार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत् पीता ।
पुटभेदश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः ॥ ७ ॥

जलहित देश में यदि वेंत का पेड़ हो तो उसके पश्चिम दो हाथ पर डेढ़ पुरुष के नीचे जल रहता है। और सोती पश्चिम से बहती है। प्रथम पानी देख पड़ने को सोती कहते हैं। और शिरा भी कहते हैं। किसी देश में नस, किसी देश में झरना कहते हैं। आधे पुरुष २॥ हाथ के नीचे सफेद मेघा देख पड़ेगा, बाद पीली मिट्टी, उसके बाद एक फुट (दोना के समान जगह में) मेदक पत्थल रहेगा, उसके नीचे जल मिलेगा (यहाँ पर १२० अंगुल का पुरुष माना है जिसका ५ हाथ होता है, पुरुष एड़ी उठा कर खड़ा होने पर १२० अंगुल का होता है ॥ ६-७ ॥

जम्बा चोदकहस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा ।
मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८॥

जम्बू (जामुन) वृक्ष के उत्तर तीन हाथ पर दो पुरुष के नीचे पूर्व में शिरा है, पुरुष भर खोदने पर लोह के समान गन्ध वाली मिट्टी और उसमें मेघा का चिह्न देख पड़ेगा ॥ ८ ॥

जम्बूवृक्षस्य प्राग् वल्मीको यदि भवति समीपस्थः ।
तस्माद् दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥
अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः ।
मृद्भवति चाऽत्र नीला दीर्घकाले बहु तोयम् ॥१०॥

जामुन वृक्ष के पूर्व में समीप ही वल्मीक (सर्पस्थान, चिवटारी) हो तो उसके दक्षिण दो पुरुष के नीचे मीठा जल रहता है । उसका चिह्न यह है, आधा खोदने पर वहाँ मछली और सफेद गोल पत्थल तथा नीली मिट्टी मिलती है । और वहाँ बहुत जल मिलता है, और वह बहुत काल तक रहता है ॥९-१०॥

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे ।
पुरुषे सितोऽहिरश्माञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला॥११॥

जल रहित देश में यदि गूलर का वृक्ष हो तो उसके तीन हाथ पश्चिम ढाई पुरुष के नीचे जल शिरा समझना । एक पुरुष प्रमाण अर्थात् ५ हाथ खोदने पर सफेद सर्प देख पड़े, फिर काजल के समान काला पत्थल देख पड़ेगा, फिर उसके नीचे जल जानना ॥११॥

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको ततोऽर्जुनो हस्तैः ।
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात्॥१२॥
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा ।
पीता सिता स-सिक्ता ततो जलं निर्दिशेदमितम् ॥१३॥

अर्जुन वृक्ष के उत्तर जो वल्मीक हो तो उस वृक्ष के तीन हाथ पश्चिम साढ़े तीन पुरुष प्रमाण के नीचे जल है, उसका पहिचान यह है कि आधा पुरुष प्रमाण (ढाई २॥) हाथ खोदने पर सफेद गोधा (गोहटा) और एक पुरुष प्रमाण पाँच हाथ के नीचे धूसरी (सेदकाली) मिट्टी, उसके नीचे बहुत जल जानना ॥

वल्मीकोपचितायां निर्गुण्यां दक्षिणेन कथितकरैः ।
पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥१४॥
रोहितमत्स्याऽर्धनरे मृत् कपिला पाण्डुरा ततः परतः ।
सिकताथ स-शर्कराऽथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥१५॥

यदि मेंउड़ी का वृक्ष वल्मीक से युक्त हो तो उसके दक्षिण तीन हाथ पर सवा दो पुरुष खने तो कभी भी सूख न सके, मीठा जल हो। पहिचान अर्ध पुरुष प्रमाण के नीचे रोहू मछली, पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद मिट्टी उसके नीचे पत्थल से युक्त रेती, उसके नीचे जल रहता है ॥१४–१५॥

पूर्वेण च यदि वदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् ।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकाऽर्धनरे ॥१६॥

यदि बैर के पेड़ के नीचे वल्मीक हो तो उसके पश्चिम तीन हाथ पर जल मिलेगा। वहाँ की निशानी यह है कि आधे पुरुष पर सफेद बिस्तुइआ मिलेगी उसके नीचे खोदने पर जल मिलेगा ॥१६॥

स-पलाशवदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति ।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च डुण्डुभिश्चिह्नम् ॥१७॥

यदि पलाश (छीउल) और बैर वल्मीक से युक्त हो, बैर वृक्ष के पश्चिम तीन हाथ पर, सवातीन पुरुष के नीचे खनने पर जल मिलेगा, जिसका चिह्न यह है कि पुरुष भर पर डुण्डुभ (दो मुखवाला विना विष का डोंड़हा सर्प) मिलेगा, उसके पास ही जल मिलेगा ॥१७॥

बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं याम्येन ।
पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्धनरे च मण्डूकः ॥१८॥

जहाँ बेल और गूलर का योग अर्थात् एक जगह हो उससे तीन हाथ दक्षिण तीन पुरुष पर्यन्त खोदने पर जल मिलेगा, अर्धपुरुष ढाई २॥ हाथ खनने पर काला मेघा मिलेगा ॥ १८ ॥

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् ।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥१९॥
आपाण्डुपीतका मृद्धी रसवर्णाश्च भवति पाषाणः ।
पुरुषेऽर्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥२०॥

काकोदुम्बर (बोखारे का) वृक्ष के नीचे वल्मीक देख पड़े तो वहाँ सवा तीन पुरुष प्रमाण खोदने पर पश्चिम जल शिरा बहती है । चिह्न-यहाँ सफेद मिट्टी उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद पत्थल और अर्धपुरुष प्रमाण तक खोदने पर सफेद चूहा देख पड़ता है ॥ १९-२० ॥

जलपरिहीने देशे वृक्षः कपिल्लको यदा दृश्यः ।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणे प्रथमम् ॥२१॥
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता चैव दृश्यते तस्मिन् ।
हस्तेऽब्जगन्धिको मत्स्यो भवति पयोल्पं च सक्षारम् ॥२२॥

जल रहित देश में कपिल (रुई मदार बड़ी मौसरो) का पेड़ देख पड़े तो उसके पूर्व तीन हाथ पर, सवा तीन हाथ के नीचे दक्षिण शिरा बहती है । उसका चिह्न—पहले नीलकमल के सदृश मिट्टी, फिर कबूतर के रङ्ग की मिट्टी या पीली मिट्टी दृश्यगोचर होगी, उसके नीचे १ हाथ खोदने पर अजगन्धी मत्स्य देख पड़ेगा, या बकरी के गन्ध के सदृश मछली देख पड़ेगी जल बहुत थोड़ा और खारा होगा ॥ २१-२२ ॥

शोणाकं तरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य ।
कुमुदानाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥२३॥

शोणाक (टेसू) वृक्ष के वायुकोण में दो हाथ छोड़कर तीन पुरुष के नीचे कुमुदा नाम शिरा बहती है ॥ २३ ॥

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे बिभीतकस्य यदि।
मध्यर्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥२४॥

बहेड़ा वृक्ष के दक्षिण वल्मीक देख पड़ने से उस वृक्ष के दो हाथ पूर्व डेढ़ पुरुष के नीचे जल शिरा जाने ॥ २४ ॥

तस्यैव पश्चिमायां वल्मीको यदि दृश्यते भवेद्धस्ते।
तत्रोदग् भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥२५॥
श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयमतीते ॥२६॥

बहेड़ा के पश्चिम में वल्मीक होय तो उस वृक्ष के उत्तर १ हाथ छोड़कर साढ़े चार पुरुष के नीचे जल शिरा रहती है। चिह्न यह है, एक पुरुष प्रमाण खोदने पर विश्वम्भर (प्राणीविशेष) देख पड़ता है, फिर लाल पत्थल, उसके पश्चिम जल शिरा है परन्तु वह तीन वर्ष में नाश होगी ॥ २५-२६ ॥

स-कुशः सित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥२७॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता।
कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥२८॥

जिस भूमि में कचनार वृक्ष देख पड़े और उस वृक्ष के ईशान कोण में कुशा से युक्त सफेद रंग की वल्मीक हो तो उस वृक्ष और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष के नीचे बहुत जल रहता है। वहाँ ये चिह्न होते हैं—प्रथम में कमलोदर तुल्य सर्प देख पड़ेगा, उसके बाद लाल वर्ण की भूमि मिलेगी फिर हरे रङ्ग का पत्थल मिलेगा, ये वहाँ के चिह्न हैं ॥ २७-२८ ॥

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृक्षस्तदुत्तरे तोयम्।
वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवन्ति चिह्नानि ॥२९॥

पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च ।
पाषाणोभ्रऽनिकाशः सौम्या च शिरा शुभ्राम्बुवहा ॥३०॥

यदि सप्तपर्ण वृक्ष वल्मीक से युक्त हो तो उस वृक्ष के उत्तर ५ हाथ के बाद जल होता है, उसके चिह्न ये हैं—प्रथम आधे पुरुष के नीचे हरे रंग का मेढक मिलेगा फिर हरताल के समान मिट्टी मिलेगी, उसके नीचे मेघ के वर्ण का पत्थल मिलेगा और उसके उत्तर मीठे जल वाली शिरा मिलेगी ॥ २९-३० ॥

सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यते ।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥३१॥
पुरुषे तु भवति नकुलो नील-मृत्-पीतिका ततः श्वेता ।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चाऽत्र ॥३२॥

यदि सब वृक्षों के नीचे मेघा हो, उस वृक्ष के उत्तर दिशा में एक हाथ दूरी पर ४॥ पुरुष के नीचे जल रहता है, एक पुरुष के नीचे खोदने पर नेवला मिलेगा, उसके बाद नीली मिट्टी, उसके बाद सफेद मिट्टी, उसके बाद मेढक के समान पत्थल मिलेगा, फिर उसके नीचे जल मिलेगा ॥ ३१-३२ ॥

यद्यहिनिलयो दृश्यते दक्षिणतः संस्थिता करञ्जस्य ।
हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥३३॥
कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा ।
उद्गन्धा स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्ततस्तोयम् ॥३४॥

करंज वृक्ष के दक्षिण में सर्पवास का वल्मीक दिखाई दे तो उस करंज वृक्ष के दक्षिण दिशा में दो हाथ दूरी के बाद साढ़े तीन पुरुष के नीचे जलवाहिनी सोती मिलती है, उसके चिह्न ये हैं कि पहले आधे पुरुष २॥ हाथ खोदने पर कच्छप तथा उसके आगे पूर्वाभिमुख जल बहता हुआ मिलेगा दूसरी उत्तर शिरा मीठे जल वाली मिलेगी, उसके नीचे हरे रंग का पत्थल है फिर जल मिलेगा ॥ ३३-३४ ॥

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् ।
परिहृत्य पञ्चहस्तानर्धाष्टमपुरुषे प्रथमम् ॥३५॥
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णोऽश्मा ।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥३६॥

महुआ के वृक्ष के उत्तर दिशा में यदि सर्प का वल्मीक दिखाई पड़े तो उस वृक्ष के पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूरी के बाद साढे सात पुरुष के नीचे सर्पराज मिलेंगे, उसके नीचे धूम्रवर्ण की भूमि, उसके नीचे कुलथी के रंग का पत्थल मिलेगा, वहाँ माहेन्द्री नाम पूर्वाभिमुख जल बहने वाली शिरा होती है और उससे सदैव फेन युक्त जल बहा करता है ॥ ३५–३६ ॥

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य स-कुशदूर्वश्चेत् ।
पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वरुण्यां शिरा पूर्वा ॥३७॥

जो तिलक वृक्ष के दक्षिण जहाँ कुश, दूर्वायुक्त उत्तम वल्मीक हो तो उस वृक्ष के पश्चिम पाँच हाथ के बाद-पाँच पुरुष के नीचे जल रहता है, वहाँ पूर्वा शिरा है ॥ ३७ ॥

सर्पावासः पश्चाद् यदा कदम्बस्य दक्षिणजलम् ।
परितो हस्तत्रितया षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः ॥३८॥
कौबेरी चाऽत्र शिरा भवति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् ।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥३९॥

यदि कदम्ब वृक्ष से पश्चिम दिशा में सर्पवास वल्मीक हो तो दक्षिण दिशा में तीन हाथ के बाद पौने छः पुरुष के नीचे जल बहता है, वहाँ उत्तरा नाम शिरा होती है । उसमें से लोह के समान गन्ध निकलता हुआ जल देख पड़ता है । उसका चिह्न यह है कि एक पुरुष खनने पर नीचे सुवर्ण के समान मेढक मिलता है और पीली मिट्टी मिलती है ॥ ३८–३९ ॥

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नारिकेलो वा ।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥४०॥

यदि ताड के वृक्ष के या नारियल के वृक्ष के समीप वल्मीक विद्यमान हो तो उन वृक्षों के पश्चिम दिशा में ६ हाथ के बाद चार पुरुष के नीचे जल दृष्टिगोचर होगा, और दक्षिण शिरा होगी ॥ ४० ॥

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेद् दुग्धजलं वाच्यम्।
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥४१॥
कर्बुरकोऽहिपुरुषे कृष्णा मृत् पुटभिदपि पाषाणः।
श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥४२॥

यदि कैंथ वृक्ष के दक्षिण दिशा में सर्पवास वल्मीक हो तो उस वृक्ष के उत्तर दिशा में सात हाथ के बाद पाँच पुरुष के नीचे जल रहता है, उसके चिह्न ये हैं कि—प्रथम पाँच हाथ खनने पर कर्बूर वर्ण का सर्प तथा काली मिट्टी होगी, तदनन्तर पुटभेदी पत्थल मिलेगा, उसके नीचे सफेद मिट्टी और वहाँ ही एक पश्चिमा शिरा और उसके बाद एक उत्तरा शिरा मिलेगी ॥ ४१-४२ ॥

अश्मान्तकस्य वामे वदरी वा दृश्यतेऽहिनिलया वा।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम् ॥४३॥
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिक्तः मृत्।
आदौ शिरा च याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥४४॥

यदि बदरी वृक्ष वा सर्पगृह अश्मान्तक वृक्ष के उत्तर या वामभाग में हो तो उस वृक्ष से छः हाथ बाद साढ़े तीन पुरुष के नीचे उत्तर दिशा में जल होता है। इस चिह्न से उसको जाने, पहले एक पुरुष खोदने पर कच्छप, फिर धूसररंग का पत्थल मिलेगा, फिर बालुका युक्त मिट्टी मिलकर पहिले दक्षिण शिरा, फिर ईशान से बहने वाली दूसरी शिरा मिलेगी ॥ ४३-४४ ॥

वामेन हरिद्रतरो वल्मीकश्चेत् ततो जलं पूर्वे।
हस्तत्रितये पुरुषैः सत्र्यंशैः पञ्चभिर्भवति ॥४५॥
नीलो भुजगः पुरुषे मृत्-पीतः मकरतोपमश्चाश्मा।
कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणे नाऽन्या ॥४६॥

यदि हरदी वृक्ष के उत्तर वल्मीक देख पड़े तो उस वृक्ष से पूर्व दिशा में तीन हाथ के बाद साढ़े पाँच पुरुष के नीचे जल रहता है। पहले वहाँ पर एक पुरुष के नीचे जल दिखाई पड़ेगा, फिर पीली मिट्टी उसके नीचे मरकत पत्थल मिलेगा, फिर काली भूमि, फिर पश्चिमा शिरा, दूसरी दक्षिण शिरा मिलेगी ॥ ४५–४६ ॥

जलपरिहीने दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि।
वीरणदूर्वादयश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥४७॥
भार्ङ्गी त्रिवृत्ता दन्ती शूकरपादी च लक्षणानि चैव।
वनमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु त्रिभिः पुरुषैः ॥४८॥

जलरहित देश में जहाँ ये अनूपचिह्न देख पड़ें, वहाँ अधिक जल कहना चाहिए। प्रथम उसके वीरण दूर्वा हो तो वहाँ ही भूमि अति कोमल होती है, और वहाँ पर एक पुरुष के नीचे जल रहता है तथा ब्रह्मदण्डी, विधारा, वज्रदन्ती, के पाँच लक्ष्मणा, निवारी के वृक्ष हो उसके दक्षिण दिशा में दो हाथ के बाद साढ़े चार पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ४७–४८ ॥

स्निग्धः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमा समीपजलाः।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥४९॥

जो वृक्ष चिकना, विशाल शाखाओं से युक्त अतिशय छोटा, विकट हो उसके समीप में जल रहता है और जो वृक्ष सारहीन जर्जर पत्र तथा रुक्ष है, उसके पास जल नहीं रहता है ॥ ४६ ॥

तिलका-ऽम्रातक-वरुण-भल्लातक-विल्व-तिन्दुकाङ्कोलाः।
पिण्डार-शिरीषा-ऽञ्जन-परुषका-वञ्जुलातिबलाः ॥५०॥
एतेन यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नराणाम् ॥५१॥

यदि तिलक, अम्रातक, वरुण, भल्लातक, बिल्ब, तिन्दुक, आङ्कोल, पिण्डार, शिरीष, अंजन वृक्ष, परुषवृक्ष, वञ्जुल (बेंत), अतिबला (ककही) ये वृक्ष

बल्मीक से युक्त हों अथवा वल्मीक इनके समीप हो तो इन वृक्षों के उत्तर दिशा में तीन हाथ के बाद साढ़े चार पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ५०-५१ ॥

अतृणे सतृणो यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र ।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं धनं वा तस्मिन् ॥५२॥

तृणरहित भूमि पर जहाँ तृण उत्पन्न हो, अथवा तृणवाली भूमि तृण से हीन होगई हो तो उस स्थान में जल तथा धन रहता है ॥ ५२ ॥

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।
खात्वा पुरुषस्त्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥५३॥

जहाँ पर कण्टक वृक्ष में अकण्टक वृक्ष हों अथवा अकण्टक वृक्ष में कण्टक वृक्ष हो, उस वृक्ष के पश्चिम दिशा में तीन हाथ के बाद सवा तीन पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ५३ ॥

नदति मही गम्भीरं यस्मिन् चरणहता जलं तस्मिन् ।
सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौवेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥५४॥

जिस स्थान पर भूमि को चरण से मारने पर मधुर शब्द हो वहाँ उत्तरा शिरा बहती है, और साढ़े तीन पुरुष खनने पर जल मिलता है ॥ ५४ ॥

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥५५॥

यदि वृक्ष की एक शाखा झुकी हुई हो, वा पाण्डुवर्ण की हो तो उस डार के नीचे तीन पुरुष प्रमाण के नीचे जल होना जानना ॥ ५५ ॥

फलकुसुमविकारो यस्य शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता ॥५६॥

जिस वृक्ष के फल पुष्प में विकार हो, उस वृक्ष के पूर्व में तीन हाथ आगे चार पुरुष के नीचे जल समझना, पहले पत्थर, फिर पीली मिट्टी का चिह्न रहता है ॥ ५६ ॥

यदि कण्टकैर्विना कण्टवृक्षकण्टकवृक्षो दृश्यते सितैः कुसुमैः।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषैश्च ॥५७॥

यदि कंटक वृक्ष काँट से रहित हो तो, या उसमें सफेद फल देख पड़े तो उसके नीचे साढ़े तीन पुरुष के बाद जल रहता है, ऐसा समझना ॥ ५७ ॥

खजूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जितदेशे।
तस्याः पश्चिमभागे निर्दिश्यं त्रिभिः पुरुषैर्वारि ॥५८॥

जिस निर्जल देश में दो शिर का (दो डार का) खजूर का वृक्ष हो उस वृक्ष के पश्चिम दिशा में दो हाथ बाद तीन पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ५८ ॥

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात् पलाशवृक्षो वा।
सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बुपुरुषत्रये भवति ॥५९॥

यदि कठचम्पा का वृक्ष श्वेत पुष्प से युक्त हो, अथवा पलास का वृक्ष हो तो उसके बायें भाग में दो हाथ के बाद दो पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ५९ ॥

उष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुग्मे।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥६०॥

जिस भूमि में विशेष गर्मी हो, धूम देख पड़े, वहाँ पर दो पुरुष के नीचे बड़े वेग से बहने वाली शिरा (सोती) रहती है ॥ ६० ॥

यस्मिन् क्षेत्रे देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे ॥६१॥

जिस भूमि पर अन्न, घास आदि उत्पन्न होकर विनाश हो, या जिस भूमि पर स्निग्ध अन्न अधिक हो, या धान्य के पत्ते पीतवर्ण के हों उस भूमि पर दो पुरुष के नीचे महाशिरा विशेष प्रवाह से बहती है ॥६१॥

मरुदेशे भवति शिरा यथा-तथातः परं वक्ष्यामि।
ग्रीवाकरभाषणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥६२॥

जिस भूमि पर अल्प जल वर्षे वह भूमि सूती रेती-सी हो उसे 'मरुभूमि' कहते हैं। उस 'मरु' भूमि में जिस प्रकार शिरा ज्ञात होती है, उसको कहता हूँ उस देश में जल की शिरा ऊँट के गर्दन के समान भूमि में जाती है (बहुत नीचे होती है) ।।६२।।

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात्।
उत्तरगमनाय च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः ।।६३।।
चिह्नं च दर्दुरादौ मृत् कपिलं तत्परे भवति हरिता।
भवति च पुरुषद्वयेऽधोऽश्मा तस्य तले वारि निर्देश्यम्।।६४।।

जो पीलू खरोट में वा वृक्ष के ईशान में वल्मीक की मिट्टी का ढेर लगा हो तो उस पीलू वृक्ष के पश्चिम साढ़े चार हाथ के बाद पाँच पुरुष के नीचे जल रहता है, पहिले खनने पर मेढक का चिह्न मिलेगा, फिर पीले रंग की मिट्टी मिलेगी, फिर हरे रंग की भूमि मिलेगी—इन चिह्नों के बाद एक पत्थल के नीचे शिरा बहती है ।।६३-६४।।

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपञ्चमैः हस्तैः।
दिशि याम्यां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ।।६५।।
प्रथमे पुरुषे भुजगः सिताऽसिते हस्तमात्रमूर्तिश्च।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूमिपानीयम् ।।६६।।

पीलू वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक देख पड़े तो उस वृक्ष के दक्षिण दिशा में साढ़े चार ४।। हाथ के बाद सात पुरुष के नीचे जल रहता है। प्रथम चिह्न एक पुरुष के बाद सफेद और काले वर्ण का एक हाथ का सर्प दिखाई पड़ेगा, फिर दक्षिण दिशा में बहनेवाली शिरा होगी वह जल खारा बहा करती है ।।६५-६६।।

उत्तरतः करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयः पुरुषः पीतोऽत्र मण्डूकः ।।६७।।

करीर वृक्ष के उत्तर दिशा में सर्पवास हो तो उसके दक्षिण दश पुरुष के नीचे स्वादिष्ट जल जानना। वहाँ १ पुरुष खोदने के बाद पीतवर्ण का मेढक मिलेगा ।। ६७ ।।

रोहितकस्य च पश्चादहिवासश्चेत् त्रिभिः करैर्याम्ये ।
द्वादशपुरुषा खात्वा स-क्षारा पश्चिमेन शिरा ॥६८॥

रोहित वृक्ष के पश्चिम जो सर्पवास हो तो तीन हाथ दक्षिण पश्चिम मुख खारे जल की शिरा १२ पुरुष के नीचे मिलेगी ॥६८॥

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्रागदृश्यः पश्चिमेन शिराहस्ते ।
खात्वा चतुर्दशनरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥६९॥

यदि अर्जुन वृक्ष के पूर्व दिशा में वल्मीक देख पड़े तो उस इन्द्रतरु से १ हाथ बाद १४ पुरुष खोदने पर पश्चिम दिशा में नीचे बहने वाली शिरा मिलती है, जिसमें कि एक पुरुष खोदने पर कपिल वर्ण का गोहिया मिलेगा ॥६९॥

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद् वामतो भुजङ्गगृहम् ।
हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये पञ्चदशनरा माने तु ॥७०॥
क्षारं पयो नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभाश्चाश्मा ।
रक्ता च भवति वसुधा वसुधा वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥७१॥

यदि अमिलतास वृक्ष के नीचे वामभाग में उत्तर सर्पवास हो तो उस वृक्ष के दक्षिण ओर दो हाथ के बाद १५ पुरुष खोदने पर खारा जल निकलता है। पहले डेढ़ पुरुष खोदने पर नेवला, तथा ताम्रवर्ण का पत्थल, फिर लाल भूमि के बाद शिरा बहती है ॥ ७०-७१ ॥

बदरी-रोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेत् विनापि वल्मीकम् ।
हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥७२॥
सुरसं जलमादौ दक्षिणशिरा वहति चोत्तरेणाऽन्या ।
पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥७३॥

जिस स्थान में वैर का वृक्ष रोहित वृक्ष से मिले हुए हो, वहाँ पर वल्मीक हो या न हो तो उन वृक्षों के पश्चिम दिशा में तीन हाथ के बाद सोलह १६ पुरुष नीचे जल समझना। वहाँ प्रथम १॥ पुरुष के बाद बिच्छू देख पड़ेगा,

उसके बाद प्रथम दक्षिण तथा द्वितीय उत्तराभिमुख मीठे पानी की शिरा होती है ।। ७२-७३ ।।

सकरीश्चेद् वदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः ।
अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ।।७४।।

यदि वह वृक्ष करीर वृक्ष के साथ दृष्टिगोचर हो तो उस वृक्ष के पश्चिम दिशा में जल तीन हाथ के दूरी पर अट्ठारह १८ पुरुष के नीचे रहता है। वहाँ पर विशेष जल से युक्त शिरा ईशान कोण में बहती है ।। ७४ ।।

पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम् ।
विंशत्यापुरुषाणामशोष्यम्भोऽत्र स-क्षारम् ।।७५।।

वेर वृक्ष, पीलुवृक्ष से संयुक्त हो तो उस वृक्ष से पूर्व तीन हाथ दूरी पर बीस २० पुरुष के नीचे खारा तथा अधिक जल रहता ।। ७५ ।।

ककुभ-करीरावेकत्र संयुतो यत्र ककुभ-बिल्वौ वा ।
हस्तद्वयेऽम्बुपश्चान्नरैर्भवेत् पञ्चविंशत्या ।।७६।।

जहाँ पर ककुभ और करीर का वृक्ष एक साथ हो अथवा जहाँ पर ककुभ और बिल्ववृक्ष एक साथ हो उन वृक्षों के पश्चिम दिशा में दो हाथ के बाद पच्चीस २५ पुरुष के नीचे जल रहता है ।। ७६ ।।

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुरा सन्ति ।
कूपमध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ।।७७।।

यदि वल्मीक के ऊपर की दूब तथा कुशा पीले रङ्ग का हो जाय तो उस वल्मीक के मध्य में कूप निर्माण करने से २१ पुरुष नीचे जल रहता है ।। ७७ ।।

भूमिः कदम्बयुक्ता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा ।
हस्तत्रयेण याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ।।७८।।

जहाँ पर भूमि कदम्ब वृक्ष से युक्त हो तथा वहाँ पर दूर्वा वल्मीक युक्त देख पड़े तो उस वृक्ष के दक्षिण दिशा में दो हाथ के बाद २५ पुरुष के नीचे जल होता है ।। ७८ ।।

वल्मीकत्रयमध्ये रोहितक-पादपो यदा भवति।
नानावृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलैस्तत्र वक्तव्यम् ॥७९॥
हस्तचतुष्के मध्यात् षोडशभिश्चाऽङ्गुलैरुदग्वारि।
चत्वारिंशत् पुरुषात् खात्वाऽश्मातः शिरा भवति ॥८०॥

यदि रोहित (गुल्नार) वृक्ष के साथ अन्य तीन वृक्ष से अधिक हो और वे तीन वल्मीक के मध्य में हों तो वहाँ जल रहता है। उस रोहित वृक्ष से वल्मीक के मध्य में जो हो उसके उत्तर दिशा में जल बहने वाली सोती चार हाथ १६ अङ्गुल के बाद चालिस ४० पुरुष के नीचे बहा करती है॥ ७९-८०॥

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः।
पश्चात् पञ्च करान्ते शतार्धसंख्यैर्नरैः सलिलम् ॥८१॥

जिस स्थान पर शमी वृक्ष ग्रन्थि युक्त हो उसके उत्तर वल्मीक हो तो उस शमी वृक्ष के पश्चिम पाँच ५ हाथ दूर पर पचास ५० पुरुष नीचे जल बहा करता है॥ ८१॥

एकस्थः यदा पञ्च वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥८२॥

यदि एक ही स्थान पर पाँच वल्मीक हों तो उनमें से पाँचवा मध्यस्थ होगा। यदि मध्यस्थ वल्मीक श्वेत हो तो उसी वल्मीक में ५५ पुरुष के नीचे जल स्रोत बहा करती है॥ ८२॥

स-पलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेषु मानवैः षष्ठ्या।
अर्धनरे हि प्रथमं स-बालुका पीतमृत् परतः ॥८३॥

जिस स्थान पर पलाश और शमी वृक्ष युक्त हों तो उस वृक्ष के पश्चिम भाग में ५ हाथ के बाद ६० पुरुष के नीचे जल रहा करता है। पहिले ½ पुरुष के बाद बालू सहित पीली मिट्टी रहती है॥ ८३॥

वल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहितको भवेद् यस्मिन् ।
पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥८४॥

जहाँ पर श्वेत रोहितक वृक्ष वल्मीक से युक्त हो उस स्थान पर रोहितक वृक्ष से पूर्व दिशा में १ हाथ के बाद ७० पुरुष के नीचे जल रहता है ॥८४॥

श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः ।
नरपञ्चकसंयुक्त्या सप्तत्या हि नरार्धे च ॥८५॥
मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् ।
जम्बू-वेतसपूर्वे ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥८६॥

यदि शमी वृक्ष के दक्षिण बहुत से सफेद कण्टक वृक्ष हों तो वहाँ पर २॥ हाथ के बाद पाँच पुरुष युक्त ७० पुरुष के नीचे जल बहता है। मरुदेश में जो चिह्न कहा गया है उसी चिह्न से स्वल्पोदक तथा पहाड़ी देशों में जल विचार नहीं करना चाहिये। जम्बू तथा वेतस वृक्ष के द्वारा जो विचार किया गया है उन्हीं चिह्नों से मरु देश में द्विगुणित विचार करना चाहिये ॥ ८५-८६ ॥

जम्बूत्रिवृता पूर्वा शिशुमारी सारिका शिवा श्यामा ।
वीरुधयी वाराही ज्योतिषमती च गरुडवेगा च ॥८७॥
सूक-करीष-माष-मर्णी व्याघ्रपदश्चेति यद्यहेर्निलये ।
वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥८८॥

जामुन, त्रिवृता, मोरवेल, शिशुमारी, सारिका, हरीतक, श्यामा, पीपर, विरुधय, वाराही, मालकमुनी, गुरुची से सूकर कन्द, बनउर्दी, व्याघ्रपदा आदि औषधि सर्पवास बल्मीक से युक्त हो तो उस बल्मीक से उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद ३ पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ८७-८८ ॥

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः ।
एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥८९॥

उपरोक्त कथित बातें बहुत जल बाले देश में रहती हैं और यही लक्षण थोड़े

जल वाले देश में ५ पुरुष में रहता है और यही लक्षण निर्जल देश में रहने से जल ७ पुरुष के नीचे होता है ॥ ८९ ॥

एकनिभा यत्र मही तृण-तरु-वल्मीक-गुल्मपरिहीना ।
तस्यां यत्र विकारो भवति धरण्यां जलं तत्र ॥९०॥

जिन स्थान पर पृथ्वी एक समान हो और तृण वृक्ष लतादि से हीन हो और उस भूमि में यदि विकार पैदा हो जाय तो १५ पुरुष के नीचे जल-श्रोत मिलता है ॥ ९० ॥

यत्र स्निग्धा निम्ना स-वालुका सानुनादिनी वा स्यात् ।
तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा ॥९१॥

जो भूमि स्निग्ध, नीची, बालुका युक्त तथा शब्द युक्त हो और शब्द करती हो तो उस भूमि में ४ या ५ पुरुष के बाद जल रहता है ॥ ९१ ॥

स्निग्धा तरुणा याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च ।
तरुगहनेऽपि विकृतो यस्मात् तदेव वदेत् ॥९२॥

जहाँ पर स्निग्ध तरु अधिकांश रहते हैं तो उन वृक्षों से दक्षिण दिशा में जल ४ पुरुष के नीचे रहता है। और उन वृक्षों में भी जिसमें विकार पैदा होजाय उसके भी दक्षिण ४ पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ ९२ ॥

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे ।
कीटा वा यत्र विना लयेन बहवोऽम्बु तत्रापि ॥९३॥

जहाँ की भूमि पदाघात करने से नीची हो जाय (नीचे को चली जाय) तो चाहे बहूदक भूमि हो अथवा न हो परन्तु उस भूमि में १॥ पुरुष के नीचे जल रहता है और जहाँ कीट और कृमि बिना घर के वास करें वहाँ भी १॥ पुरुष के नीचे जल मिलता है ॥ ९३ ॥

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः ।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥९४॥

जिस गरम प्रदेश में जहाँ की जमीन कुछ शीत हो जाय, या जहाँ शीत ही हो परन्तु कहीं भी गरम हो तो वहाँ ३½ पुरुष के नीचे जल रहता है और जङ्गलादि देशों में जहाँ यह इन्द्रधनुषाकार मत्स्य की तरह भूमि हो या जहाँ वल्मीक हो वहाँ ४ पुरुष के नीचे जल मिलता है ॥ ९४ ॥

वल्मीकानां मध्याद् यद्येकोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः।
शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राऽम्भः ॥९५॥

जहाँ पर अधिकांश वल्मीक हो और उनमें एक वल्मीक ऊँचा हो तो उच्च वल्मीक के नीचे ४ हाथ के बाद शिरा बहती है। या जिस भूमि पर पैदा हुआ अनाज सूख जाता हो, या बीजाङ्कुर उत्पन्नहीं न हों उस स्थान पर भी ४ हाथ के नीचे जल रहता है, केवल जाङ्गल और शून्य देश का ही विचार है ॥ ९५ ॥

न्यग्रोध-पलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः।
वट-पिप्पलसमवाये तद्वद् वाऽन्यं शिरा चोदक् ॥९६॥

बड़ (न्यग्रोध), पलाश, गूलर ये तीनों वृक्ष जहाँ एक साथ उगे हुए हों वहाँ ३ हाथ के नीचे ही जल मिलता है और वहाँ उत्तर की ओर जलश्रोत बहा करती है। और वट, पीपल का योग भी जहाँ हो वहाँ पर भी नीचे ३ हाथ पर जल होता है ॥ ९६ ॥

आग्नेये यदि कोणो ग्रामस्य पुरस्य वा कूपः।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥९७॥
नैऋत्यकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये।
दिक्त्रयमेतत् त्यक्त्वा शेषासु शुभावहा कूपाः * ॥९८॥

---

* गृहे कूपफलम्—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत् पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥
वास्तु (गृह) के मध्य भाग में कूप हो तो धननाश, ईशानकोण में पुष्टि,

जो कूप ग्राम के आग्नेयकोण में हो तो उस कूप से ग्राम वालों को नित्य भय रहेगा और प्रायः उस कूप से मनुष्यों को अग्निभय करता है। और कूप यदि ग्राम के नैर्ऋत्यकोण में हो तो बालकों का क्षय करता है, वायव्यकोण में कूप हो तो स्त्रियों को भय करता है, अतः कूप तीनों कोणों को छोड़कर सब दिशाओं में शुभ है ॥ ९७-९८ ॥

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य ।
आर्याभिः कृतमेतद् वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥९९॥

वराह मिहिर कहते हैं कि यह दकार्गल सरस्वती मुनि की रचनानुसार आर्या छन्द में कहा और अब मनुकृत दकार्गल को भिन्न-भिन्न छन्दों में कहूँगा ॥९९॥

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्यो,
निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिराऽस्ति ।
पद्म—क्षुरोशीर—कुला स—गुण्ड्रा,
कासाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥१००॥
खजूर-जम्बा-ऽर्जुन-वेतसाः स्युः,
क्षीरान्विता वा द्रुम-गुल्म-वल्लयः ।
छत्रेभनागा शतपत्रनीपाः,
स्युर्नक्तमालाश्च स-सिन्दुवाराः ॥१०१॥
विभीतको वा मदयन्तिका वा,
यत्राऽस्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः ।
स्यात् पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्या,
तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥१०२॥

पूर्व में ऐश्वर्यवृद्धि, अग्निकोण में पुत्र का नाश, दक्षिण में स्त्री का नाश, नैर्ऋत्य-कोण में मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति, वायुकोण में शत्रु से पीड़ा, उत्तर में सुख होता है।

जिस स्थान पर शाखा के समूह, लता, स्निग्ध वृक्ष तथा छिद्र रहित पत्ते हों उस स्थान पर ३ पुरुष के नीचे शिरा बहती है अथवा जहाँ पर स्थल कमल, गोखुर, खश, कचनार, नागरमोथा, काश, कुश, सुगन्ध औषधि, नरकट, खजूर, जामुन, अर्जुन, वेत, क्षीर वृक्ष, गुल्म (एक मूल शाखासमूह), लताइम (रतालू), नाग (नागकेशर), शतपत्र (कमल), नीप वृक्ष विशेष नक्तमाल, सिन्दुवार (सेधुवा) वृक्ष से युक्त हो वा बहेड़ा एवं दमयन्ती जिस स्थान पर हो वहाँ भी तीन पुरुष के नीचे जल रहता है। जहाँ पर्वत के ऊपर पर्वत रहता है वहाँ पर्वत के मूल में ३ पुरुष के नीचे जल रहता है॥ १००-१०२॥

सूर्याऽग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा,
या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा।
रक्ताङ्कुराक्षीरयुताः करीरा,
रक्ताधरा चेज्जलभस्मनोऽधः॥ १०३॥

जो भूमि सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊष्ट्र तथा गदहे के रङ्ग की हो वह निर्जला होती है। जहाँ पर करीर का वृक्ष रक्त वर्ण का हो और अङ्कुर और दूध से युक्त हो तो वहाँ पर पत्थर के नीचे जल रहता है॥ १०३॥

वैदूर्य-मुद्गाम्बुद-मेचकाभा, पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा।
मृगाञ्जनामा कपिलाऽथवा वा, ज्ञेया शिला भूरि समीरतोया॥१०४॥

यदि पत्थर वैदूर्य मणि के समान मुद्ग (मूँग) कृष्ण वर्ण हो तथा पके गूलर फल के समान लाल हो, जिस पत्थर के तोड़ने से सुर्मा के वर्ण का चूर्ण हो या सफेद हो उस पत्थर के पास में बहुत-सा जल है इस प्रकार जाने॥ १०४॥

पारावतक्षौद्रघृतोपमा वा क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा।
या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साऽप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च॥१०५॥

जो भूमि कबूतर के समान हो, मधु वा घृत के समान हो वा रेशमी वस्त्र के

समान हो अथवा जो भूमि सोमवल्ली लता के सदृश हो तो वह बहुत शीघ्र ही अक्षय जल को करती है ॥ १०५ ॥

ताम्रैः समेता पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा ।
भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्पिका वा सूर्याग्निना वा च शिला वितोया ॥१०६॥

जो शिला ताम्र वर्ण के पृषत अर्थात् तिलक से युक्त हो अथवा नाना वर्ण के चिन्हों से अङ्कित हो, या जिस शिला का पाण्डु वर्ण या भस्म ऊँट या गदहा के समान रंग हो या भ्रमर के समान या अङ्गुष्ठ के वृक्ष के फूल के समान रंग हो, या सूर्य अग्नि के समान हो उसे जल रहित जाने ॥ १०६ ॥

चन्द्रातप-स्फटिक-मौक्तिक-हेमरूपा,
याश्चेन्द्रनीलमणि-हिङ्गुल-काञ्चनाभाः ।
सूर्योदयांशु हरितालनिभाश्च या स्युः,
ता शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥ १०७ ॥

जो शिला चन्द्रमा के समान कान्ति वाली स्फटिक तुल्य हो, मोती के सदृश हो, सुवर्ण या इन्द्रनीलमणि के या हिंगुल (लाल) वर्ण के तुल्य हो या अञ्जन के समान कान्ति वाला हो, या सूर्य उदय के समय सूर्यविम्ब के समान कान्ति वाला हो, या हरताल के समान हो वह उत्तम है, ये सब श्लोक जो कहे गये हैं ये मुनि के वचन हैं ॥ १०७ ॥

एता ह्यभेद्याश्च शिला शिवाश्च यक्षैश्च नागैश्च सदाऽभियुष्टाः ।
येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिं न भवेत् कदाचित् ॥१०८॥

ये पूर्वोक्त शिला अभेद्य हैं (तोड़ने योग्य नहीं हैं) कल्याण करने वाली हैं। यक्ष नाग से सेवित ये शिला जिस राजा के राज्य में होती हैं उसके राज्य में कभी भी अवर्षण नहीं होता है। समयानुकूल वर्षा होती है जिससे राजा प्रजा पशु पक्षी सस्य आदि सब प्रसन्न रहते हैं ॥ १०८ ॥

भेदं यदा नैति शिला तदानीं पलाशकाष्ठै रहितेन्दुकानाम् ।
प्रज्वाल्य चैवानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥१०९॥

यदि शिला तोड़ने का विचार हो तो पलाश और तेंदु के काष्ठ को धर कर उसके ऊपर अग्नि जलादे, जब शिला लाल हो जाय तब उसको चूना के पानी से ठण्डा करे तो शिला फूटती है ॥१०९॥

तोयं सृतं मोक्षकभस्मना यत् तत् सप्तकृत्वः परिषेचनं च ।
कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वाह्नवितोपितायाः ॥११०॥

मोक्षक (मरुवक, जमीरी नीबू) वृक्ष के भस्म में जलशर नाम के भस्म को मिलाकर गरम की हुई शिला को सात बार सींचे, पुनः पुनः गरम करे और सींचे तो शिला फूटती है ॥११०॥

तक्र-काञ्जिक-सुरा सकुलोत्था योजिता बदराणि च तस्मिन् ।
सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥१११॥

तक्र (मण्ठा), कांजी मद्य, कुलित्थ इन सब को एकत्र करके उसमें बैर डाले, सात रात्रि एकत्र रख कर उससे गरम शिला को ठण्ढा करने से शिला फूटती है ॥१११॥

नैवं पत्रं त्वक् च नालं निलानां
साऽपामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुरूची ।
गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां
षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिद्यतेऽश्मा ॥११२॥

नीब के पत्र और छाल, निल का नाल, चिचिड़ा, तेंनुवा और गुरुच इनका भस्म गोमूत्र से युक्त करे, उससे गरम किया पाषाण छः बार पुनः पुनः गरम करके सींचने से पाषाण फूटता है ॥११२॥

अर्कपयो हुडविषाण-मषीसमेतम् ,
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः ।
टङ्कस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानम् ,
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद् विघातः ॥११३॥

मदार के दूध में मेढा के सींग की राख मिलावे, फिर उसमें कपूर और चूहा के विष्ठा को मिलावे, इसका लेप तेल मले हुए जिस टाँकी पर लेप करे फिर धो दे, बाद घिसकर चोख करे वह टाँकी पत्थल तोड़ने के समय नहीं टूटेगी। (बराहमिहिराचार्य ने अ० ५० श्लो० २५ में भी लिखा है—वहाँ 'टङ्कस्य' के जगह 'शस्त्रस्य' लिखा है। अतः तलवार आदि पर भी यह क्रिया करने पर तलवार आदि न टूटेगी) ॥११३॥

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
दिनोषिते पापितमायसं यत्।
सम्यक् क्षितं चाऽश्मनि नैति भङ्गं
न चाऽन्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥११४॥

केला का क्षार (राख) मण्ठे से युक्त करे, अहोरात्र एकत्र रखे, फिर उस पानी को जिस लोहे के शस्त्र (तलवार, बरछी, छूरी, टाँकी आदि) को खूब पिलावे (खूब भिगोवे) तब वह पत्थल पर या अन्य लोहे पर कुँठित न होगा॥

पालीप्रागपरायताम्बुसुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा;
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्;
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णद्विपाश्वादिभिः ॥११५॥

पूर्व पश्चिम वाली (कूप, पोखरा, बावली) बहुत दिन जल धारण करती हैं। उत्तर दक्षिण दिशा में बहुत दिन नहीं रहते हैं क्योंकि वायु प्रेरित तरंगों से उसका विशेष विदारण होता है। ऐसे कूप को जो बनाने की इच्छा करे वह जिस तरह जलतरंग जाते हों उस तरफ दृढ काष्ठ से या पत्थल से, अथवा ईंट, मूँज से जब पतन स्थल को बनावे वा पशुओं से उस स्थान को मर्दन करावे तब दृढ होता है ॥ ११५ ॥

जलाशयतटे शोभनवृक्षाः—

ककुभ-वटा-ऽऽम्र-प्लक्ष-कदम्बैः सनिचुल-जम्बु-वेतस-नीपैः।

कुरुवक-ताला-ऽशोक-मधूकैर्वकुल-विमिश्रैश्चाऽम्बुततीरा ॥११६॥

अर्जुन, वट, आम्र, पाकर, इमिली, कदम्ब, बेत, नीम, जामुन, कटसरई, ताड़, अशोक, महुआ, मौसली, ये वृक्ष जलाशय के तट पर लगावे ॥ ११६ ॥

द्वारं च नैवाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासञ्चितवारिमार्गम् ।
कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत् ताम् ॥११७॥

बावली, तालाब, बड़े कूप आदि में पानी आने के लिये पत्थल से सुदृढ नाली-नहर बनवावे, उसके ऊपर रक्षार्थ छिद्ररहित केवाड़ लगाना और मृत्तिका से आच्छादित कर देना चाहिए ॥ ११७ ॥

अञ्जन-मुस्तोशीरः सराजकोशातकामलचूर्णैः ।
कनकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः ॥११८॥
कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुगन्धिगुणैरपरैश्च युतम् ॥११९

अंजन (कुटकी अथवा काला कपास), नागरमोथा, खस, बनतरोई इनका चूर्ण और कनक फल (निर्मला का बीज) को कूप में छोड़े, उससे कूप का मैला-पन और जल कटु, क्षार, नीरस, अशुभ गन्ध वाला भी स्वच्छ सुरस सुगन्धित गुणों से और अपर गुणों से भी युक्त हो जाता है ॥ ११८-११९ ॥

कृत्वा वरुणबलिं वट-वेतसकीलकं शिरास्थाने ।
कुसुमैर्गन्धपुष्पैः सम्पूज्य निधापयेत् प्रथमम् ॥१२०॥

वरुण को बलि देके बट तथा बेल के कील को गन्ध पुष्प धूप से पूजन करके प्रथम स्थापित करे ॥ १२० ॥

मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं,
ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा ।
भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं,
सम्यक् बराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥१२१॥

मेघोद्भव जल को ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा, ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उसे देख बलदेव के मत से पहले हमने २३ वें अध्याय में कहा है। भूमि सम्बन्धी दूसरा दकार्गल जल देखना हमने बराहमिहिर मुनि की कृपा से कहा है ॥ १२१ ॥

कूपचक्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मयामले।
रोहिण्यादि लिखेच्चक्रं यावत् तिष्ठति चन्द्रमा ॥१२२॥
एकमध्ये द्वयं पूर्वे ह्याग्नेय्यां च त्रयं तथा।
याम्ये वाणस्थितं चैव नैऋत्ये रसमेव च ॥१२३॥
पश्चिमे युग्मवायव्यां चोत्तरे त्रीणि दापयेत्।
ईशाने च त्रयं दद्याद् ब्रह्मऋक्षादनुक्रमात् ॥१२४॥
मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वे भूमिश्च खण्डिता।
आग्नेय्यां स-जलं प्रोक्तं याम्ये च निर्जलं भवेत् ॥१२५॥
नैऋत्ये सुजलं प्रोक्तं पश्चिमे शोभनं जलम्।
वायव्ये चैव पाषाणं उत्तरे च समुद्रवत् ॥१२६॥
ईशाने मनसा सिद्धिर्वापी कूपस्य लक्षणम् ॥१२७॥

कूप चक्र को ब्रह्मयामल में जिस प्रकार से कहे हैं वैसा कहता हूँ। रोहिणी से चन्द्र नक्षत्र पर्यन्त गिने, चक्र में इस प्रकार स्थापित करे–मध्य में १, पूर्व दिशा में २, अग्निकोण में ३, दक्षिण दिशा में ५, नैऋत्य में ६, पश्चिम दिशा में २, वायव्य में २, उत्तर दिशा में ३, ईशान कोण में रोहिणी नक्षत्र से क्रम से देवे। मध्य में शीघ्र स्वादु जल, पूर्व दिशा में खण्डित भूमि, अग्नि कोण में जल, दक्षिण दिशा में निर्जल, नैऋत्य कोण में सुन्दर जल, पश्चिम दिशा में शोभन जल, वायव्य कोण में पाषाण, उत्तर में समुद्रवद् जल, अथाह जल और ईशान में मनसासिद्धि, इस तरह बावली कूप के लक्षण को जानना ॥ १२२–१२७ ॥

आदियामलोक्तकूपचक्रम्।

कूपचक्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं चादियामले।
वृत्ताकारं लिखेच्चक्रं मध्ये त्रीणि प्रदापयेत् ॥१२८॥
रोहिण्यादीनि गणयेद् यावद् तिष्ठति चन्द्रमा।
पूर्वादि सृष्टिमार्गेण त्रीणि त्रीणि प्रदापयेत् ॥१२९॥
मध्ये त्रीणि जलस्वादु पूर्वे भूमिस्तु खण्डिता।
आग्नेय्यां सजलं प्रोक्तं याम्ये च निर्जलं स्मृतम् ॥१३०॥
नैऋत्ये चाऽमृतं वारि पश्चिमे सजलं स्मृतम्।
वायव्ये च जलं हन्ति उत्तरे चाऽमृतं जलम् ॥१३१॥
ईशान्यां कटुकं क्षारं कूपचक्रे न संशयः॥

❀ कूपचक्रम् ❀

ईशानकोण अ० भ० कृ० ३ कटु, क्षार	पूरब पु० पु० श्ले० ३ खंडितभूमि	आग्नेयकोण म० पू० उ० ३ सुन्दरजल
उत्तर पू० भा० उ० भा० रे० ३ मीठा जल	मध्ये ३ नक्षत्र रो० मृ० आ० स्वादुजल	दक्षिण ह० चि० स्वा० ३ निर्जल
वायव्यकोण श्र० ध० श० जलहानि	पश्चिम मूल, पू० षा०, उ० षा० ३ सुन्दर जल	नैऋत्यकोण वि० अनु० ज्ये० ३ मीठा जल

जिस प्रकार आदि यामल में कूपचक्र कहा है वही कहता हूँ— वृत्त (गोल) चक्र को बनावे, मध्य में तीन नक्षत्र को देवे। फिर पूर्वादि ८ दिशाओंमें तीन तीन नक्षत्र स्थापित करे। मध्य के तीन नक्षत्र में स्वाद वाला जल होता है, पूर्व में भूमि खण्डित होती है। अग्निकोण में जल होता है। दक्षिण दिशा में जल नहीं होता है। नैऋत्यकोण में जल होता है। पश्चिम दिशा में जल होता है। वायव्यकोण में जल की हानि है, उत्तर में मीठा जल होता है और ईशानकोण में कड़ुआ, खारा जल होता है ॥ १२८-१३१ ॥

श्रुति-स्मृति-पुराणादौ तीक्ष्णांशु चाऽम्बुदः स्मृतः।
तस्मात् सूर्यर्क्षतो मुख्यं कूपचक्रं विचारयेत् ॥१३२॥

वेद, स्मृति, पुराणादि में सूर्य को जल का दाता बताया है इससे सूर्य के नक्षत्र से कूप चक्र को अवश्य बिचारे। सूर्य का बिचार मुख्य है, अन्य विचार गौण हैं ॥ १३२ ॥

सूर्यभुक्ताच्च नक्षत्राद् गणयेद् दिनभावधि।
चतुर्भिश्च हरेद् भागं शेषं फलविचिन्तयेत् ॥ १३३ ॥
जलकृत् मृत्युकृत् चैव क्षयकृत् कलहस्तथा।
एते योगाः समाख्याताः कूपे चैव विचारयेत् ॥ १३४ ॥

सूर्य के क्षत्र से चन्द्र नक्षत्र पर्यन्त गिने, उसमें ४ का भाग दे, शेष के अनुसार फल समझे। एक शेष में जल होगा, दो शेष में मृत्यु होगी, तीन शेष में क्षय कराने वाला, और शून्य शेष कलह कराने वाला होता है। सूर्य नक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र १-५-९-१३-१७-२१-२५ ही श्रेष्ठ है ॥१३३-१३४॥

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिस्त्रिभिः।
स्वल्पं जलं स्वादु जलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षीरजलं च मिश्रितम्॥१३५॥
मिष्टं जलं क्षारजलं क्रमेण वै पुरातनैरुक्तमिति प्रवीणैः ॥१३६॥

सूर्य के नक्षत्र से कूप चक्र को कहते हैं। सूर्य के नक्षत्र से कूपारम्भ करने का नक्षत्र तीन पर्यन्त मध्य के हैं, इन तीन नक्षत्रों में कूप खनने से

स्वादिष्ट जल होता है, मध्यगत नक्षत्र के बाद तीन नक्षत्र पूर्व के स्वल्प जल करने वाले हैं, फिर तीन नक्षत्र अग्निकोण के स्वादिष्ट जल करने वाले, फिर तीन नक्षत्र दक्षिण के जल न होने वाले हैं, फिर तीन नक्षत्र नैऋत्य के मीठे जल वाले हैं, फिर तीन नक्षत्र पश्चिम के दूध के सदृश जल करने वाले, फिर तीन नक्षत्र अनेक प्रकार के जल करने वाले, फिर तीन नक्षत्र उत्तर के मीठा जल करने वाले, फिर तीन नक्षत्र ईशान कोण के खारा जल करने वाले हैं॥ १३५-१३६॥

❃ सूर्यनक्षत्र से कूप चक्र ❃

दिशा	मध्य	पूर्व	अग्नि	द०	नै०	प०	वा०	उ०	ई०
नक्षत्र									
फल	जल	भूमि खंड	स्वादु जल	अ जल	सु जल	जल	क्षार जल	जल	क्षार जल

अश्विन्यादि सूर्य नक्षत्र से कूपारम्भ में शुभनक्षत्र—

अ	चन्द्र नक्षत्र
अ.	पुष्य. ह. अनु. ध. श.
भ.	रो. पुष्य. म. अनु. ध. श.
कृ.	रो. मृ. म. अनु. पू. षा. श. उ. भा.
रो.	रो. मृ. म. अनु. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
मृ.	मृ. उ. फा. ह. अनु. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
चि.	पू. उ. षा. उ. भा. रे. रो. पुष्य. म.
स्वा.	अनु. उ. षा. ध. रे. रो. मृ. म.
वि.	अनु. धनि. श. रो. मृ. म. उ. फा.
अ.	अनु. ध. श. रो. मृ. उ. फा. ह.
ज्ये.	पू. षा. श. उ. भा. रो. मृ. पुष्य. उ. फा. ह.
उ. षा.	उ. षा. ध. रे. पुष्य. म. अनु.

श्र.	ध. श. पुष्य. म. उ. फा. अनु.
ध.	ध. श. रो. पुष्य. म. उ. फा. ह. अनु.
श.	श. उ. भा. रो. मृ. म. उ. फा. ह. पू. षा.
पू. भा.	उ. भा. रे. रो. मृ. म. पू. फा. ह. पू. षा. उ. षा.

भौमनक्षत्रात् कूपचक्रम् ।

रात्रीशा-ऽब्धिगुणाऽग्निवेददहनारामाग्निरामास्तथा ।
ताराभौमभतोजलाजलमथो स्वादु सुखण्डं तथा ॥ १३७ ॥
पीयूषो जलशोषणं शुभजलं क्षारं सुपूर्णं जलम् ।
गर्गाचार्य-पराशर-प्रभृतयः प्राप्ताम्बुचक्रे क्रमात् ॥ १३८ ॥

मंगल के नक्षत्र से जिस दिन कूपारम्भ का नक्षत्र हो उसे गिने, यदि १ हो तो जल, फिर ४ पर्यन्त अजल, फिर ३ नक्षत्र तक स्वादु जल, फिर ३ नक्षत्र तक खण्ड जल, फिर ४ नक्षत्र तक अमृत जल, फिर ३ नक्षत्र तक शुद्ध जल, फिर ३ नक्षत्र तक शुष्क जल, फिर ३ नक्षत्र तक क्षार जल, फिर ३ नक्षत्र तक पूर्ण जल होता है ॥ १३७–१३८ ॥

भौम नक्षत्र से कूप चक्र—

कूपारम्भ के नक्षत्र

अ.	पुष्य. उ. फा. ह. अनु. उ. भा. रे.
भ.	पुष्य. ह. अनु. उ. भा. रे.
कृ.	पुष्य. भ. अनु. पू. षा. रे.
रो.	रो. म. अनु. पू. षा. उ. षा.
मृ.	रो. मृ. म. उ. फा. अनु. पू. षा. उ. षा.
आ.	रो. मृ. उ. फा. ह. अनु. पू. षा. उ. षा. ध. श.
पु.	रो. मृ. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. ध. श.
पु.	पुष्य. मृ. ह. पू. षा. उ. षा. ध. श.
श्ले.	पुष्य. उ. भा. पू. षा. उ. षा. ध. श.

म.	पुष्य. म. अनु. उ. षा. ध. श. उ. भा. रे.
पू.	पुष्य. म. अनु. ध. श. उ. भा. रे.
उ.	म. उ. फा. अनु. ध. श. उ. भा. रे.
ह.	म. उ. षा. ह. पू. षा. श. उ. भा. रे.
चि.	रो. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
स्वा.	रो. मृ. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
वि.	रो. मृ. ह. उ. षा. ध. रे.
अ.	रो. मृ. अनु. ध. श.
ज्ये.	पुष्य. रो. मृ. अनु. ध. श.
मू.	पुष्य. रो. मृ. अनु. श.
पू.	पुष्य. रो. मृ. म. अ. उ. षा. रे.
उ.	पुष्य. मृ. म. पू. षा. उ. षा. रे.
श्र.	पुष्य. म. उ. फा. पू. षा. उ. षा. रे.
ध.	पुष्य. म. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. रे.
श.	पुष्य. रो. म. उ. फा. ह. उ. षा. ध. श.
पू.	रो. मृ. म. उ. फा. ह. ध. श.
उ.	रो. मृ. म. उ. फा. ह. ध. श. उ. भा.
रे.	मृ. उ. फा. ह. अनु. श. उ. भा. रे.

जीवनक्षत्रात् कूपचक्रम् ।

पञ्च-वाण-शर-सप्त-पञ्चभं जीवभादशुभशोभनं स्मृतम् ।
कूपचक्रमिति मैत्रवासवे तोयपार्कध्रुवपितृभे शुभम् ॥१३९॥

कूप में बृहस्पति के नक्षत्र से कूपारम्भ के दिन का नक्षत्र ५ के भीतर हो तो अशुभ, फिर ५ में शुभ, फिर ५ में अशुभ, फिर सात ७ में शुभ, फिर ५ में अशुभ है और अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी) और मघा नक्षत्र में कूपारम्भ करना शुभ है ॥ १३९ ॥

बृहस्पति के नक्षत्र से कूपचक्र—

जीव. न.	कूपारम्भ के चन्द्र नक्षत्र
अ.	पुष्य. अनु. म. पू. षा. उ. षा.
भ.	पुष्य. अनु. म. पू. षा. उ. षा. ध.
कृ.	पुष्य. म. उ. फा. पू. षा. उ. षा. ध. श.
रो.	ह. मृ. उ. फा. पू. षा. उ. षा. ध. श.
मृ.	ह. उ. भा. मृ. उ. फा. पू. षा. उ. षा. ध. श.
आ.	ह. उ. भा. उ. फा. रे. उ. षा. ध. श.
पु.	ह. उ. भा. उ. फा. ध. श. रे.
पु.	ह. अनु. उ. भा. ध. श. रे.
श्ले.	अनु. उ. भा. श. रे.
म.	अनु. रो. उ. भा. रे.
पू.	अनु. रो. मृ. पू. षा. उ. षा. रे.
उ.	अनु. रो. मृ. पू. षा. उ. षा. रे.
ह.	रो. मृ. पू. षा. उ. षा.
चि.	पुष्य. रो. मृ. पू. षा. उ. षा. ध.
स्वा.	पुष्य. रो. मृ. पू. षा. उ. षा. ध. श.
वि.	पुष्य. रो. मृ. म. उ. षा. ध. श.
अ.	पुष्य. मृ. म. ध. श.
ज्ये.	पुष्य. म. उ. षा. ध. श. रे.
मू.	पुष्य. ह. म. उ. फा. श. रे.
पू.	पुष्य. ह. म. उ. फा. श. रे.
उ.	ह. म उ. फा. रे.
श्र.	ह. रो. म. उ. फा. रे.
ध.	ह. अनु. रो. मृ. उ. फा.
श.	ह. अनु. रो. मृ. ठ. फा.
पू.	ह. अनु. रो. मृ.
उ.	पुष्य. अनु. रो. मृ. पू. षा.
रे.	पुष्य. अनु. मृ. पू. षा. उ. षा.

राहुभात् कूपचक्रम् ।

पञ्चाग्निरामाग्नियुगाब्धिद्व्यग्निभं
शुभाऽशुभं राहुभतः क्रमेण वै ।
ध्रुवाऽम्बुपार्कान्त्यभमित्रवासवे
मित्रे शुभं स्यात्तु समानचक्रे ॥१४०॥

राहु के नक्षर से कूप चक्र को कहता हूँ, राहु के नक्षत्र से पाँच नक्षत्र में कूपारम्भ करने से शुभ फल, फिर तीन नक्षत्र में अशुभ फल, फिर तीन नक्षत्र में शुभ, फिर तीन नक्षत्र में अशुभ, फिर ४ नक्षत्र में शुभ, फिर चार नक्षत्र में अशुभ, फिर दो नक्षत्र में शुभ, फिर तीन नक्षत्र में अशुभ फल होता है ॥ १४० ॥

कूपारम्भे मासाः ।

मार्गे माघे च वैशाखे ज्येष्ठेऽन्त्येऽपि च कार्तिके ।
कूप-वाप्यादिकारम्भे मासाः स्युश्चोत्तमाः शुभाः ॥१४१॥

कूप, वापी, तडागका मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुन, कार्तिक मास में आरम्भ करना उत्तम तथा शुभ है ॥ १४१ ॥

कूपारम्भे तिथिनिर्णयः ।

तृतीया पञ्चमी चैव सप्तमी दशमी तथा ।
अष्टम्येकादशी चैव कूपारम्भे सुशोभनाः ॥१४२॥
रिक्ता-ऽमा-प्रतिपद्कृष्णे वर्जितान्ये च मध्यमाः ।

कूपारम्भ करना—३, ५, ७, १०, ८, ११ तिथि में उत्तम है, रिक्ता तिथि (४, ९, १४) तथा कृष्ण पक्ष में अमावास्या तथा शुक्ल पक्ष का प्रतिपद् निषेध है, शेष तिथि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा २, ६, १२, १३, १५ मध्यम है ॥१४२॥

राहुनक्षत्र	राहु के नक्षत्र से कूप चक्र—
अ.	रो. मृ. म. अनु. ध. श.
भ.	रो. मृ. म. उ. फा. अनु. ह. श.
कृ.	रो. मृ. उ. फा. अनु. पू. षा. ह. उ. भा.
रो.	रो. मृ. पुष्य. हस्त. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
मृ.	मृ. पुष्य. पू. षा. उ. षा. रे.
आ.	पुष्य. म. पू. षा. उ. षा. ध.
पु,	पुष्य. म. अनु. उ. षा. ध. श.
पु.	रो. पुष्य. म. उ. फा. अनु. ध. श.
श्ले.	रो. मृ. म. अनु. ह. ध. श. उ. भा.
म.	मृ. म. उ. फा. ह. पू. षा. उ. भा. रे.
पू.	उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
उ.	पुष्य. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
ह.	पुष्य. हस्त. अनु. उ. षा. ध. रे.
चि.	रो. म. अनु. ध. श.
स्वा.	रो. मृ. म. अनु. ध. श.
वि.	रो. मृ. उ. फा. अनु. पू. षा. उ. षा. उ. फा.
अ.	रो. मृ. उ. फा. हस्त. अनु. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
ज्ये.	पुष्य. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
मू.	मृ. पुष्य. पू. षा. उ. षा. ध. रे.
पू.	पुष्य. म. पू. षा. उ. षा. ध. श.
उ.	रो. पुष्य. म. अनु. उ. षा. ध. श.
श्र.	रो. मृ. म. उ. फा. अनु. ध. श. उ. भा.
ध.	रो. मृ. म. उ. फा. ह. ध. श. उ. भा. रे.
श.	मृ. उ. फा. ह. पू. षा. श. उ. भा. रे.
पू.	पुष्य. उ. फा. ह. पू. षा. उ. षा. उ. भा. रे.
उ.	पुष्य. ह. उ. षा. उ. भा. रे.
रे.	पुष्य. रो. पुष्य. म. अनु. ध. रे.

रविवारे जलं नास्ति चन्द्रे पूर्णजलं भवेत् ।
भू-सुते बालुका चैव चन्द्रपुत्रे जलं बहु ॥१४३॥
वाक्पतौ मिष्टतोयं च क्षारं चैव भृगोर्दिने ।
शनौ च जलहानिः स्यात् वारजं फलमीदृशम् ॥१४४॥

कूपारम्भ सूर्य वार को करे तो जल नहीं होता है, चन्द्रवार को पूर्ण जल होता है, मंगल को बालु होती है, बुध को विशेष जल होता है। बृहस्पति वार को मीठा जल होता है। शुक्रवार को खारा जल होता है, और शनिवार को कूपनिर्माण करने से जल नहीं होता ॥ १४३-१४४ ॥

कूपारम्भे शुभनक्षत्राणि ।

हस्तो मघाऽनुराधा-पुष्य-धनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः ।
शतभिषग् इत्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥१४५॥

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनो उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा नक्षत्र कूपारम्भ में शुभदायक है ॥ १४५ ॥

तथा—

*हस्तपुष्ये ध्रुवे तोयेऽनुराधा वासवेऽम्बुपे ।
मघायां च मृगे चान्त्ये शुभे कूपादि कर्मसु ॥१४६॥

---

*हस्तपुष्योऽनुराधा च ध्रुवमित्रत्रयं वसु ।
कूपारम्भं शुभं प्राहुर्मुनीन्द्राश्च्यवनादयः ॥ १ ॥
चित्रायां च तथा स्वातौ मूले चैव पुनर्वसौ ।
अश्विन्यां च तथा कार्यं श्रवणेऽपि शुभं तथा ॥ २ ॥
हस्त-पुष्य-ध्रुवादीनि त्रयोदशमितानि च ।
भानि चोत्तमसंज्ञानि पूर्वोक्तानि च सूरिभिः ॥ ३ ॥
चित्रादि यानि चोक्तानि मध्यमानि भवन्ति हि ।
आवश्यकेऽग्राह्याणि केषाञ्चित् मतमीदृशम् ॥ ४ ॥

हस्त, पुष्य, ध्रुव (रोहिणी, तीनो उत्तरा), पूर्वाषाढ, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, मृगशिरा और रेवती नक्षत्र में कूपादि का आरम्भ करना शुभ है ।। १४६ ।।

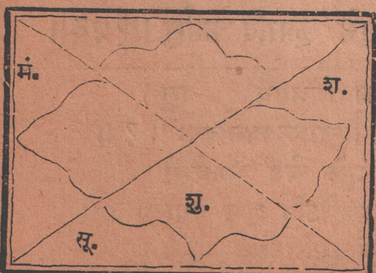
कूपारम्भ—

लग्ने शशाङ्केऽथ जलोदये वा पूर्णः शशी केन्द्रगते व्यये वा ।
लग्नेऽथ जीवो भृगुजेऽथ सौम्ये जलं चिरर्थं सुरसं सुगन्धम् ॥१४७॥



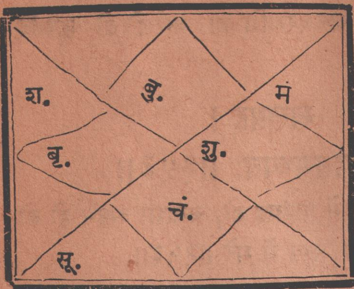
कूपारम्भ के समय चन्द्रमा लग्न में हो, या जलचर राशि में हो अथवा पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र में, या वायव्य में हो, लग्न में गुरु हो अथवा शुक्र हो अथवा बुध हो तो चिरकाल रहने वाला सुरस सुगन्ध जल होता है ॥१४७॥

कुजे तृतीये भृगुजेऽस्तगे च षष्ठे रवौ लाभगतेऽर्कपुत्रे ।
चन्द्रे च षष्ठे व्ययवर्जिते च प्रियं जलं तद् भवतीह चित्रम्॥१४८॥



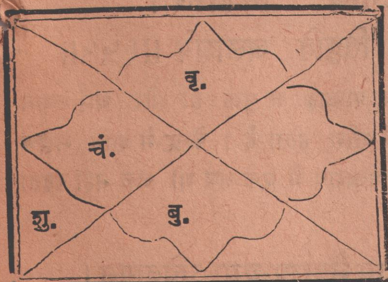
कूपारम्भ लग्न से तीसरे मंगल हों, सातवें शुक्र हों, छठे सूर्य और लाभ में शनि हो, और चन्द्रमा छठे, बारहवें न हों ऐसे समय में कूपारम्भ करने से प्रिय सुन्दर जल होता है ॥१४८॥

सौरे तृतीये मदने च चन्द्रे षष्ठे रवौ लाभगते च भौमे ।
केन्द्रे शुभैश्चाऽष्टमवर्जितैश्च जलं स्थिरं स्याद् धनपुत्रदं च ॥१४९॥



कूपारम्भ के समय लग्न से तीसरे शनि, सप्तम चन्द्र, छठे सूर्य, लाभ में मंगल हो, केन्द्र में शुभग्रह हों और अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो स्थिर काल रहनेवाला धन पुत्र देने वाला जल होता है ॥१४९॥

केन्द्रे त्रिकोणेऽष्टशुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राऽष्टमवर्जितेषु ।
सर्वेषु कार्येषु शुभं वदन्ति प्रासाद-कूपादि-तडाग-वाप्याम् ॥१५०॥



केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (५।९) में और अष्टम में शुभग्रह हो, और पापग्रह केन्द्र अष्टम में न हो तो कूप, तालाब, वापी आदि सब कार्यों के आरम्भ में शुभ है ॥१५०॥

चन्द्रोदये तद्दिवसे सुरेज्ये केन्द्रस्थिते चोपचयैः खलैश्च ।
उद्यान-कूपादि-तडाग-वापी-जलाशयानां करणं प्रशस्तम् ॥१५१॥

चन्द्रमा लग्न में हो, चन्द्रवार हो, बृहस्पति केन्द्र में हों और उपचय स्थान (३,६,१०,११) में पापग्रह हों तो बगैचा, कूप, तालाब और वापी, जलाशयों का आरम्भ करना शुभ होता है ॥१५१॥

सर्वेषु लग्नेषु शुभं वदन्ति विहाय सिंहा-ऽलि-धनुर्धराश्च ।
ग्रहासतालोकनयोगयोगात् तदा प्रकुर्याज्जलमीशवर्गे ॥१५२॥

सिंह, वृश्चिक, धन राशि को छोड़कर अन्य कोई राशि लग्न में हो और लग्न

को शुभग्रह देखते हों, योगाधियोग हो, और जलचरराशि का वर्ग हो तो कूपादि जलाशय का आरम्भ करना शुभ है ॥१५२॥

चतुर्थाऽष्टमगैः पापैर्जललग्ने खलग्रहे।
चन्द्रेऽष्टमे तदा कर्ता म्रियते मासमध्यतः ॥१५३॥

यदि चौथे आठवें पापग्रह हों, जल लग्न में पापग्रह हो, चन्द्रमा अष्टम हो तो कूपादि जलाशय का बनाने वाला एक मास के मध्य में मरे ॥१५३॥

केन्द्रे पापग्रहैर्युक्ते ह्यष्टमे च व्ययेऽपि वा।
धर्मस्थानगतैर्वाऽपि तज्जलं क्षीयते चिरात् ॥१५४॥
केन्द्रगैः सौरिभौमार्कैरष्टमस्थे निशाकरे।
तज्जलं वर्षमध्ये तु न तिष्ठति जलाशये ॥१५५॥

केन्द्र और अष्टम तथा व्यय स्थान पापग्रह से युक्त हो और धर्म स्थान में पापग्रह हों तो वह जल चिरकाल में क्षीण होता है। केन्द्र में शनि, मङ्गल और सूर्य हों और अष्टम चन्द्रमा हों तो जलाशय में एक वर्ष भी जल नहीं रहता है ॥ १५४-१५५ ॥

सर्वासु दिक्षु सलिलं प्रकुर्य्याद् विहाय नैर्ऋत्य-यमा-ऽग्निवायून्।
पूर्वोत्तरेशानजलेशदिक्षु कृतं जलं सौख्यसुतप्रदः स्यात् ॥१५६॥
तडाग-पुष्करोद्यान-मण्डपानां यथाक्रमम्।

नैर्ऋत्य, दक्षिण, अग्नि, वायव्य इनको छोड़ अन्य सब दिशाओं में कूप, बावली, तडागादि जलाशय बनावे। पूर्व, उत्तर, ईशान, पश्चिम क्रम से तडाग, पुष्कर, उद्यान, मण्डप सुत सौख्य को देते हैं ॥१५६॥

ज्योतिर्विदाभरणे—

पुराद्धुताशीनिलराक्षसाशामुक्तान्यकाष्ठासु सुवारिदोऽन्ध्रः।
वानीर-दूर्वा-कुशवामलूरक्षोण्यां भवेत् स्वादु जलं च शीघ्रम् ॥१५७॥

ग्राम से अग्निकोण, वायु कोण, नैर्ऋत्य कोण को छोड़कर अन्य दिशा में

कूप हो तो सुन्दर जल देता है। वानीर, दूर्वा, कुश, मल्लूर जहाँ भूमि में हो वहाँ शीघ्र स्वादिष्ट जल होता है ॥१५७॥

अघाऽर्जुनोदुम्बर-सिन्धुवारा पर्ण-प्रवालाऽतिविशालशाखाः ।
वल्मीक-पार्श्वास्फुरगाहिपत्र यत्राऽम्बु निर्देश्य मलं समासु ॥१५८॥

अघ, अर्जुन, उदुम्बर (गूलर), सिंधुवार, पर्ण, मूँगा, विशाल, वल्मीक का समीप जहाँ हो वहाँ सुन्दर जल समझना ॥१५८॥

चन्द्रवासज्ञानम् ।

* तिथिपञ्चगुणा कार्या वारर्क्षेण समन्विता ।
वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१५९॥
एकशेषे वसेत् स्वर्गे द्विशेषे तु रसातले ।
त्रिशेषे मृत्युलोके च चन्द्रवासः प्रजायते ॥१६०॥
रसातले यदा चन्द्रः पञ्चकर्माणि वर्जयेत् ।
कूप-वाप्यादिकारम्भे जलं नैव च जायते ॥१६१॥
बीजोप्तौ बीजनाशः स्याद् यात्रायां कार्यनाशकृत् ।
विद्यारम्भे भवेन्मूर्खस्तस्माच्चन्द्रं विचारयेत् ॥१६२॥

कूपारम्भ की तिथि को ५ से गुणे, उसमें वार, नक्षत्र मिलावे, फिर उसमें

---

* "तिथि-पञ्चगुणी कृत्य एकमेव समन्वितम् ।
वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषं चन्द्रं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥
एकेन वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादेवं चन्द्रं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

तथा च मदीयविचारः—

द्वितीयायां च पञ्चम्यामष्टम्यां विश्वके तिथौ ।
चतुर्दश्यां च वसति पाताले रजनीपतिः ॥ ३ ॥
कूप-वापी-तडागानामारम्भोपवनस्य च ।
यात्रा-विद्यादिकारम्भं पातालेन्दौ न कारयेत्" ॥ ४ ॥

३ का भाग दे, शेष के अनुसार फल कहे। यदि एक शेष बचे तो चन्द्रवास स्वर्ग में, दो शेष बचे तो पाताल में चन्द्रमा को समझे तथा शून्य शेष प्राप्त होने पर चन्द्रमा का वास मृत्युलोक में जाने। यदि चन्द्रमा पाताल में हो तो पाँच कर्म न करे, कूप, बावली आदि जलाशय के आरम्भ करने पर जल नहीं होता है। बीज बोने से बीज का नाश होता है। यात्रा करने से यात्रा की हानि होती है। विद्यारम्भ करने से मूर्ख होता है॥ १५९-१६२॥

उदाहरण—माघसुदी ५ गुरुवार को रेवती नक्षत्र है। तिथि ५ को ५ से गुणा तो २५ हुए इसमें बार ५ और नक्षत्र २७ को जोड़ा तो ५७ हुए, इसमें ३ का भाग दिया तो शेष शून्य बचा, अतः चन्द्रमा का निवास मर्त्यलोक में होना निश्चय हुआ॥ १५९-१६२॥

जलविचारः—

वर्तमाने च नक्षत्रे तिथिश्चैव समन्वितः।
चतुर्भिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत्॥१६३॥
एकशेषे जलं नास्ति द्विशेषे बहुलं जलम्।
तृतीये तु जलं पूर्णं शून्ये शून्यजलं भवेत्॥१६४॥

वर्तमान नक्षत्र में तिथि को मिलावे फिर उसमें ४ का भाग देना, शेष के अनुसार फल कहना। १ शेष में जल नहीं होगा, २ शेष में जल विशेष होगा, ३ शेष में जल पूर्ण होगा, शून्य शेष में जल न होगा॥ १६३-१६४॥

जलविचारचक्रम्—

कूपारम्भनक्षत्र		रो. पुष्य उ. फा. पू. षा. शतभिष	मृ. ह. अनु. उ. षा.	म. उ. भा.	रे.
शुक्लपक्ष तिथि	कृष्णपक्ष तिथि				
२, ७, ११	८	पूर्णजल	शून्य	जलं नास्ति	विशेष जल
५	१०	जलं नास्ति	विशेष जल	पूर्णजल	शून्य
८	५	शून्यजल	जलं नास्ति	विशेष जल	पूर्णजल
१०	३।७।११	विशेषजल	पूर्णजल	शून्य	जलं नास्ति

प्रकारान्तरेण जलदिग्ज्ञानम्—

तिथि वारं च नक्षत्रं वेदाढ्यं च वसूद्धृतम् ।
शेषात् पूर्वादितो दिक्षु निर्झरः कूपकर्मणि ॥१६५॥

कूपारम्भ के दिन के तिथि, वार, नक्षत्र को जोड़कर उसमें ४ जोड़े फिर उसमें ८ का भाग देने से जो शेष बचे उसके अनुसार पूर्वादि दिशा में सोती जानना। एक शेष में पूर्व, दो शेष में अग्निकोण, इत्यादि क्रम से समझना ॥ १६५ ॥

पुनः जलज्ञानम्—

नृग्रामदिक्स्वरं चैव सूर्यर्क्षेण समन्वितम् ।
नागैश्च विभजेद् विद्वान् पूर्वादौ जलदिग् भवेत् ॥१६६॥

कूप बनानेवाले का नाम ग्राम दिशा के स्वर को एकत्र करे और उसमें सूर्य नक्षत्र को युत करे, फिर विद्वान् उसमें आठ का भाग दे, एकादि शेष के अनुसार पूर्वादि दिशा में जल का होना समझे ॥१६६॥

उदाहरण—श्रीनारायण का स्वर २ है, खेदोपुर का स्वर ५ है, ईशानकोण है स्वर २, इसको एकत्र किया तो ९ हुए, श्रवण नक्षत्र के सूर्य हैं, २२ इसको जोड़ा तो ३१ हुए, इसमें ८ का भाग देने से शेष ७ रहा, पूर्व से ७ वीं दिशा उत्तर है, इससे उत्तर में जल समझना ॥१६६॥

राशितो जलज्ञानम्—

नृचतुष्पदकीटाप्याज्जलहस्तप्रमाणकम् ।
नृराशौ तु चतुर्विंशे द्वाविंशे च चतुष्पदे ॥१६७॥
कीटे तथोनविंशाख्ये अष्टाविंशे च वारिभे ।
कूप-वाप्यादिकार्येषु जलयोगं विनिर्दिशेत् ॥१६८॥

कूपारम्भ के समय मनुष्य, चतुष्पद, कीट, जलचर राशि के अनुसार जल के हस्त प्रमाण को कहते हैं। मनुष्य राशि में २५ हाथ, चतुष्पद राशि में २२ हाथ,

कीट राशि में १६ हाथ, और जलचर राशि में २८ हाथ के नीचे कूप, वापी आदि में जल समझना ॥१६७-१६८॥

तिथि वारं च नक्षत्रं नामाऽक्षरसमन्वितम् ।

चन्द्र वार को पहले किस दिशा में जल निकलेगा—

न.	रो.	मृ.	पु.	म.	उ.	ह.	अ.	पू.	उ.	श.	उ.	रे.
ति. ३	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	प. ५	वा. ६	अ. २	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	नै. ४
५	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६
७	पू. १	च. २	प. ५	उ. ७	पू. १	अ. २	वा. ६	पू. १	अ. २	प. ५	उ. ७	ई. ८
८	अ. २	द. ३	वा ६	उ. ८	अ. २	द. ३	उ. ७	अ. २	द. ३	वा. ६	उ. ८	पू. १
१०	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प ५	पू. १	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
११	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	प. ५	वा. ६	अ. २	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	नै. ४
१८	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प. ५	पू. १	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
२०	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	बा. ६	उ. ७	द. ३	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	प. ५
२२	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	ई. ८	पू. १	प. ५	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	उ. ७
२३	पू. १	अ. २	प. ५	उ. ७	पू. १	अ. २	वा. ६	प. १	अ. २	प. ५	उ. ७	ई. ८
२५	द. ३	नै. ४	उ. ७	पू. १	द. ३	नै. ४	ई. ८	द. ३	नै. ४	उ. ७	पू. १	अ. २
२६	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प. ५	पू. ७	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३

जहाँ जहाँ १ है पूरब, २ अ., ३ द., ४ नै., ५ प., ६ वाय., ७ उ., ८ ईशा. समझना ।

अष्टभिर्गुणितं चैव षट्-त्रिंशेन विभाजितम् ॥१६९॥
हस्तशेषप्रमाणेन जलं प्रोक्तं पुरातनैः ॥१७०॥

बुधवार को पहले किस दिशा में जल निकलेगा ? यह इस निर्झर (जल) ज्ञान चक्र से ज्ञात होगा ।

	रो.	मृ.	पु.	म.	उ फा.	ह.	अ.	पू. षा.	उ षा.	श.	उ. भा.	रे.
शु. ३	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६
५	पू. १	ई. २	प. ५	उ. ७	पू. १	द. २	वा. ६	पू. १	द. २	प. ५	उ. ७	ई. ८
७	द. ३	नै. ४	उ. ७	पू. १	द. ३	नै. ४	ई. ८	द. ३	नै. ४	द. ७	पू. १	अ. २
८	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प. ५	पू. १	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
१०	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	वा. ६	उ. ७	द. ३	वा. ६	उ. ७	द. २	नै. ४	प. ५
११	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६
कृ. ३	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	वा. ६	उ. ७	द. २	वा. ६	उ. ७	द. २	नै. ४	प. ५
५	ई. ८	पू. १	नै. ४	उ. ७	नै. ४	अ. २	वा. ६	पू. १	अ. २	प. ५	उ. ७	ई. ८
७	अ. २	द. ३	वा. ६	पू. १	द. ३	नै. ४	ई. ८	द. ३	नै. ४	उ ७	पू. १	अ. २
८	द. ३	नै. ४	उ. ७	अ २	नै. ४	प ५	अ. २	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
१०	प. ५	वा. ६	पू. १	नै. ४	वा. ६	उ. ७	द. ३	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	प. ५
११	वा. ६	उ. ७	अ. २	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६

कूपारम्भ के दिन की तिथि, वार, नक्षत्र और कूप बनाने वाले का नामाक्षर की संख्या को एकत्र जोड़े, फिर उसको ८ से गुणे, उसमें ३६ का भाग दे जो शेष बचे उसके अनुसार हस्त पर जल जानना। यह पूर्व के आचार्य कहे हैं ॥१६९-१७०॥

गुरुवार निर्झर (जल) ज्ञान दिशाचक्र—

न. सं.	रो.	मृ.	पु.	म.	उ. फा.	ह.	अ.	पू. षा.	उ. षा.	श.	उ.	रे.
३	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	ई. ८	पू. १	प. ५	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	उ. ७
५	अ. २	द. ३	वा. ६	ई. ८	अ. २	द. ३	उ. ७	अ. २	द. ३	वा. ६	ई. ८	पू. १
७	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प. ५	पू. १	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
८	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	प. ५	वा. ६	अ. २	प. ५	वा. ६	पू. १	द. ३	नै. ४
१०	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६
११	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	ई. ८	पू. १	प. ५	ई. ८	पू. १	नै. ४	वा. ६	उ. ७
३	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६
५	पू. १	अ. २	प. ५	उ. ७	पू. १	अ. २	वा. ६	पू. १	अ. २	प. ५	उ. ७	ई. ८
७	द. ३	नै. ४	उ. ७	पू. १	द. ३	नै. ४	ई. ८	द. ३	नै. ४	उ. ७	पू. १	अ. २
८	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	नै. ४	प. ५	पू. १	नै. ४	प. ५	ई. ८	अ. २	द. ३
१०	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	वा. ६	उ. ७	द. ३	वा. ६	उ. ७	अ. २	नै. ४	प. ५
११	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	उ. ७	ई. ८	नै. ४	उ. ७	ई. ८	द. ३	प. ५	वा. ६

उदाहरण—रामारमण जी तिथि, ७ गुरुवार ५ पुष्य नक्षत्र ८ है, इसका जोड़ २० है, इस में कूप बनाने वाले का नामाक्षर संख्या ५ को मिलाया तो २५ हुए इसको ८ से गुणा तो २०० हुए, इसमें ३६ का भाग देने से शेष २० बचे अतः २० हाथ के नीचे जल समझना ॥ १६९-१७० ॥

मृत्तिकाज्ञानम्—

द्विगुणं दिग्स्वरं कृत्वा ग्रामस्वर-समन्वितम् ।
वसुभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१७१॥
कृष्ण-पीताऽरुणा शुभ्रा कङ्करं घोघिलं तथा ।
बालुका निर्मला चैव इत्युक्तं ब्रह्मयामले ॥१७२॥

कूप की दिशा के संख्या को दो से गुणै, उसमें ग्रामके स्वर को मिलावे, फिर ८ का भाग देने से एकादि शेष बचे, उसके अनुसार क्रम से १ कृष्णा (काली), २ पीली, ३ लाल, ४ श्वेत, ५ कंकड़, ६ घोघिल, ७ बालू तथा ८ निर्मल मिट्टी जानना ॥१७१-१७२॥

प्रकारान्तरेण मृत्तिकाज्ञानम्—

नक्षत्रं तिथि वारं च कर्तुर्नामाऽक्षरैर्युतम् ।
वेदैश्च विभजेद्धीमान् शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१७३॥
एकशेषे जलं पूर्णं द्विशेषे कर्करा भवेत् ।
बालुका वह्निशेषे स्याच्छून्ये शून्यं फलं भवेत् ॥१७४॥

कूपादिक जलाशयारम्भ में तिथि वार नक्षत्र और बनाने वाले के नाम की अक्षर संख्या को एकत्र जोड़े, उसमें ४ का भाग दे, शेष अङ्क का क्रमशः फल जाने । १ शेष में पूर्ण जल, २ शेष में कर्करा, ३ शेष में बालू और शून्य शेष का शून्य फल होता है ॥१७३-१७४॥

दीपद्वारा जलाशयस्थाननिर्णयः—

ईशानादि-चतुर्दिक्षु दीपं प्रज्वालयेद् बुधः ।
दीप-कर्दम-संलग्नस्तत्राऽम्बु हि प्रजायते ॥१७५॥

जहाँ कहीं जलाशय बनवाने का विचार हो वहाँ ईशानादि चारों कोणों में रात्रि में दीप जलाये, सबेरे देखने पर जिस दीपक में कर्दम लगा मिले उसी स्थान पर जल है, ऐसा जानना ॥१७५॥

तडागचक्रम्—

तडागस्य तु चक्रं च प्रवक्ष्यामि यथोदितम् ।
रविभाद् दिनभं गण्यं न्यासं कृत्वा वदेत् फलम् ॥१७६॥
प्राच्यादिषु द्वयं न्यस्य पञ्च मध्ये नियोजयेत् ।
षड् दद्याद् वारिवाहे तु प्रविचार्य फलं वदेत् ॥१७७॥
बहुशोकं भवेत् प्राच्याम् आग्नेय्यां सुजलं बहु ।
जलनाशं दक्षिणस्यां राक्षस्यां चाऽमृतं जलम् ॥१७८॥
स्वादूदकं च वारुण्यां वायव्यां निर्मलं भवेत् ।
स्थिरं तोयं चोत्तरे स्याच्छैवे च कुत्सितं जलम्॥१७९॥
पूर्णं जलं भवेन् मध्ये वारिवाहे तु पूर्णता ।
शुभं जलं विचार्यैवं तडागारम्भमाचरेत् ॥१८०॥

तड़ाग चक्र इस प्रकार कहा गया है कि सूर्य नक्षत्र से तडागारम्भ के नक्षत्र तक गिन डाले और उसका न्यास करके तब फल को कहे। पूर्वादिक् दिशाओं में २ नक्षत्र धरे, ५ नक्षत्र मध्य में धरे, ६ नक्षत्र वारिवाह (नल) में धर के विचार करे, और फल को इस प्रकार कहे। पूरब में अधिक शोक, अग्निकोण में सुजल, दक्षिण में जल नाश, नैऋत्य में अमृत सदृशजल, पश्चिम में स्वादिष्ट जल, वायव्य में निर्मल जल, उत्तर में स्थिर जल और ईशान में निन्दनीय जल मिलता है। मध्य में (वारिवाह में) पूर्ण और शुभ जल मिलता है। अतः तडाग को चक्र के अनुसार विचार करके बनावे। सूर्य के नक्षत्र से ३-४-७ से १४ तक फिर १७ से २७ तक शुभ है, पहला, २।५।६।१५।१६ वाँ अशुभ है ॥१७६-१८०॥

तड़ागमुहूर्त्तः—

ध्रुवे श्रौत्रेन्दु पौष्णे च पुष्ये आप्येऽम्बुपे तथा ।
कवीन्दुवारे लग्नेशे तडागारम्भणं शुभम् ॥१८१॥

ध्रुव (३ उत्तरा, रोहिणी), पुष्य, मृगशिरा, रेवती, पूर्वाषाढ और शतभिषा नक्षत्र में चन्द्र शुक्रवार और शुभ लग्न में तडागारम्भ शुभ है ॥ १८१ ॥

तड़ाग चक्र—

चन्द्र नक्षत्र

सूर्य न. अ.	४ रो. शु.	५ मृ.	८ पु. शु.	२ उ. फा.	२० शु. पू. षा.	२१ शु. उ. षा.	२२ शु. श्र.	२४ शु. श.	२६ शु. उ .भा.	२७ शु. रे.
भ.	३ शु.	४ शु.	७ शु.	११	१९ शु.	२० शु.	२१ शु.	२३ शु.	२५ शु.	२६ शु.
कृ.	२	३ शु.	६	१० शु.	१८ शु.	१९ शु.	२०	२२	२४ शु.	२५ शु.
रो.	१	२	५	९ शु.	१७ शु.	१८ शु.	१९ शु.	२१ शु.	२३ शु.	२४ शु.
मृ.	२७ शु.	१	४ शु.	८ शु.	१६	१७ शु.	१८ शु.	२० शु.	२२ शु.	२३ शु.
चि.	१८ शु.	१९ शु.	२२ शु.	२६ शु.	७ शु.	८ शु.	९ शु.	११	१३ शु.	१४ शु.
स्वा.	१७ शु.	१८ शु.	२१ शु.	२५ शु.	६	७ शु.	८ शु.	१०	१२	१३ शु.
वि.	१६	१७ शु	२० शु.	२४ शु.	५	६	७ शु.	९ शु.	११	१२
अ.	१५	१६	१९	२३ शु.	४ शु.	५	६	८ शु.	१० शु.	११
ज्ये.	१४ शु.	१५	१८ शु.	२२ शु.	३ शु.	४ शु.	५	७ शु.	९ शु.	१० शु.
उ. षा.	११	१२	१५	१९ शु.	२७ शु.	१	२	४ शु.	६	७ शु.
श्र.	१० शु.	११	१४ शु.	१८ शु.	२६ शु.	२७ शु.	१	३ शु.	५	६
ध.	९ शु.	१० शु.	१३ शु.	१७ शु.	२५ शु.	२६ शु.	२७ शु.	२	४ शु.	५
श.	८ शु.	९ शु.	१२	१६	२४ शु.	२५ शु.	२६ शु.	१	३ शु.	४ शु.
पू.	७ शु.	८ शु.	११	१५	२३ शु.	२४ शु.	२५ शु.	२७ शु.	२	३ शु.

तडागचक्र—

कूप-वापी-तडाग का आरम्भ मेष, वृष, तुला, वृश्चिक, मकर, कुम्भ के सूर्य में होता है, अतः अश्वि. से मृग. तक, चि. से ज्ये. तक, पू. षा. से पू. भा. तक के ही सूर्य के नक्षत्रों पर लिखा गया है।

अश्विनी के सूर्य में रो. पुष्य, पू. षा. उ. षा. श्र. श. उ. भा. रे.
भरणी के सूर्य में रो. मृ. पुष्य. पू. षा. उ. षा. श्र. श. उ. भा. रे.
कृत्तिका के सूर्य में मृ. उ. फा. पू. फा. उ. षा. श्र. श. उ. भा. रे.
रोहिणी के सूर्य में उ. फा. पू. षा. उ. षा. श्र. श. उ. भा. रे.
मृगशिरा के सूर्य में रो. पुष्य. उ. फा. उषा श्र. श. उ. भा. रे.

चित्रा के सूर्य में रो. मृ. पुष्य उ. फा पू. षा. उ. षा. श्र. उ.भा. रे.
स्वाती के सूर्य में रो. मृ. पुष्य उ. फा. उ. षा. श्र. श. रे.
विशाखा के सूर्य में मृ. पुष्य उ. फा. श्र. श.
अनुराधा के सूर्य में पुष्य उ. फा. पू. षा. श. उ. भा.
ज्येष्ठा के सूर्य में रो. पुष्य उ. फा. पू. षा. उ. षा. श. उ. भा. रे.

उ. षा के सूर्य में उ. फा. पू. षा. श. रे.
श्रवण के सूर्य में रो. पुष्य उ. फा. पू. षा. उ. षा. श.
धनिष्ठा के सूर्य में रो. मृ. पुष्य उ. फा. पू. षा. उ. षा. श्र. उ. भा.
शतभिषा के सूर्य में रो. मृ. पू. षा. उ. षा. श्र. उ. भा. रे.
पूर्वभाद्रपद के सूर्य में रो. मृ. पू. षा. उ. षा. श्र. श. रे.

वापीमुहूर्त्तः—

स्वात्यश्वि-हस्त-पुष्येषु मैत्रे चैव पुनर्वसौ।
रेवत्यां वारुणे चैव वापीकार्यं प्रशस्यते ॥१८२॥

स्वाती, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, पुनर्वसु, रेवती और शतभिषा नक्षत्र में वापी (बावड़ी) बनवाना शुभ है ॥ १८२ ॥

नेवारचक्रम्—

नेवारे पूर्वतस्त्रीणि त्रीणि त्रीणि च सर्वतः ।
मध्ये चत्वारि देयानि राहुभाच्चन्द्रभं बुधैः ॥१८३॥

नेवार (जमुवट) देने के लिये राहु के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिने, पूर्वादि दिशा में ३, ३ नक्षत्र सब जगह दे, मध्य में चार नक्षत्र दे ॥१८३॥

फलम्—

मध्ये पूर्वं जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्धनम् ।
याम्य-नैर्ऋतयोर्दुःखं भयं बहु परेऽन्यदिक् ॥१८४॥

यदि राहु के नक्षत्र से चन्द्रमा का नक्षत्र मध्य में तथा पूर्व में पड़े तो जल से सुख होता है, उत्तर में धन-वृद्धि करता है, दक्षिण तथा नैर्ऋत्य कोण में दुःख होता है और शेष दिशाओं में भय होता है ॥१८४॥

नेवारस्थापनमुहूर्त्तः—

ध्रुवर्क्षे क्षिप्रभे चैव शुभयोगे शुभेक्षणे ।
शुभवारे शुभतिथौ नेवारस्थापनं शुभम् ॥१८५॥

ध्रुव संज्ञक याने तीनों उत्तरा, रोहिणी, क्षिप्रसंज्ञक याने हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् नक्षत्रों में शुभ वार और शुभ तिथि में नेवार (नीचक) स्थापित करना शुभ है ॥१८५॥

कूप-वाप्यादीनां जीर्णोद्धारकरणे भादीनि—

ध्रुवे पित्र्ये धनिष्ठायां रेवत्यां चाऽम्बु भेषु च ।
पुष्ये मित्रे तथा चान्द्रे चन्द्रे च जलराशिगे ॥१८६॥
तन्नवांशगते चन्द्रे युभदृग्योगसंयुते ।
जीर्णोद्धारं प्रकर्त्तव्यं शुभे वारे च सत्-तिथौ ॥१८७॥

ध्रुव संज्ञक (उत्तरा ३, रोहिणी) मघा, धनिष्ठा, रेवती, पूर्वाषाढ, पुष्य,

अनुराधा और मृगशिरा नक्षत्र में, जल चर राशि के चन्द्रमा में या जल चर राशि के नवांश में चन्द्रमा के प्राप्त होने पर शुभवार एवं शुभ तिथि में जीर्णोद्धार करे ॥१८६–१८७॥

जलाशयानां संस्कारं कृत्वा जलपानं कर्त्तव्यमसंस्कृत-
जलपाने तु महान् दोषः—

संस्कारं प्रथमं कृत्वा जलपेयं मनीषिभिः।
असंस्कृतं जलं पीत्वा पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८८॥
तोयं सदा पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्।
कणमात्रमपि त्याज्यं संस्काररहितं बुधैः ॥१८९॥
तडाग-वापी-कूपादौ संस्काररहितं जलम्।
तदपेयं भवेत् सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९०॥

विद्वानों को चाहिए कि पहले जल का सस्कार करके तभी जल पीवें, क्योंकि बिना संस्कार किये गये कूप का जल पीने से चान्द्रायण व्रत करने पर ही उसका दोष दूर होता है। जल सदा पवित्र माना गया है परन्तु बिना संस्कार का जल अपवित्र है। संस्कार रहित जल को कण की तरह त्याग देना चाहिये। तडाग, वापी, कूप आदि का संस्कार (उसके हवन आदि का विधान 'जलाशय प्रतिष्ठा,' 'जलाशयोत्सर्ग' आदि ग्रन्थों में लिखा है) रहित जल पीकर चान्द्रायण व्रत करने पर पवित्र होगा ॥१८८–१९०॥

जलाशयकरणे माहात्म्यं मुनिभिः कथितम्—

उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति चेह परत्र च।
तस्माज्जलाशया कार्या जनैस्तु फलकाङ्क्षिभिः ॥१९१॥
कूपा-ऽऽराम-प्रपाकारी तथा कन्याप्रदश्च यः।
सेतुकारी नरः स्वर्गं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥१९२॥
यावज्जलाशये तोयं सततं खलु तिष्ठति।
स्वर्गलोकेऽक्षयं तावद् वासो भवति निश्चितम् ॥१९३॥

वापीं कूपं तडागं वा निर्जले यः करोति वै ।
तस्य पुण्यस्य सङ्ख्या च को वा वर्णयितुं क्षमः॥१९४॥
जलाशयेषु जीर्णेषु देवतायतनेषु च ।
पुनः संकारकर्त्ता च लभते चाऽधिकं फलम् ॥१९५॥

जल के बिना इस लोक और परलोक में तृप्ति नहीं होती इसलिये फल प्राप्त करने की इच्छा से मनुष्यों को जलाशय बनवाना चाहिए। कूपादिक जलाशय बनवाने वाला, बाग लगवाने वाला, पौसरा देने और दिलाने वाला तथा कन्यादान देनेवाला व्यक्ति स्वर्ग को जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, जब तक जलाशय में जल रहता है, तब तक उस व्यक्ति का क्षय स्वर्ग लोक से नहीं होता और स्वर्ग लोक में ही उसका वास भी होता है, जल रहित भूमि में वापी, कूप, तडागादि जलाशय जो बनवाता है उसके पुण्य की संख्या अपार है, जीर्ण जलाशय तथा देवालय का जो पुनरुद्धार करता है उसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥१९१-१९५॥

कूपादिनिर्माणार्थं मृत्तिकानिर्माणम् ।

विजया मङ्गला चैव निर्मला सुखदेति च ।
चतुर्धा चेष्टिका प्रोक्ता गृहे च वरुणालये ॥ १९६ ॥
तिथ्यङ्गुलिभिर्विजया मङ्गला स्वप्नभूमिभिः ।
पक्षेन्दुभिर्निर्मला स्यात् सुखदारामबाहुभिः ॥ १९७ ॥
प्रमाणमिष्टिकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतम् ।

गृह और कूप आदि जलाशय के लिये बिजया, मंगला, निर्मला, सुखदा ये चार प्रकार ईंटें कही गईं हैं । १५ अंगुल की विजया, १७ अंगुल की मंगला, १२ अंगुल की निर्मला, और २३ अंगुल की सुखदा इष्टिका प्रमाण ऋषियों ने कहा है ॥ १९६-१९७ ॥

इष्टिकारम्भचक्रम् ।

पञ्च त्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनेयभात् ।
सौख्यं मृत्युं क्रमेणैवमिष्टिकारम्भकर्मसु ॥ १९८ ॥

मंगल के नक्षत्र से इष्टिकारम्भ का शुभाशुभ चक्र इस प्रकार है ५, ३, ३, ५, ७, ५ इस में क्रम से सौख्य मृत्यु फल होता है ॥ १९८ ॥

सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	फल
५	३	३	५	७	५	नक्षत्र

नोट—मंगल के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनना चाहिए।

इष्टिकारम्भनक्षत्राणि—

ध्रुवभैर्लघुभैश्च ज्येष्ठान्त्य-श्रुतिभिस्तथा।
स्थिरङ्गेऽर्के गुरौ मन्दे इष्टिकारम्भमाचरेत्।
तथा गेहे सुधालेपमिष्टिकारम्भभेषु च ॥ १९९ ॥

ध्रुव (रो. उ. ३), लघु (ह. अश्वि. पुष्य. अभि.), ज्येष्ठा, रेवती, श्रवण, इन नक्षत्रों में और सूर्य, बृहस्पति, शनिवार में, स्थिरलग्न में ईंट का निर्माण करे और इन्हीं नक्षत्रों में गृह में मिट्टी लगाना, चूने से लुहाना श्रेष्ठ है ॥१९९॥

इष्टिकायामग्निदाहः—

सप्त-पञ्च-मुनि-वेद-पञ्चभिः शोक-लाभ-रुज-दुःख-लाभदम्।
भौमभाच्च गणयेत् सदा बुधैरिष्टिकोपरि सुवर्णदीपनम् ॥२००॥

मंगल के नक्षत्र से ईंट को पकाने में ७, ५, ७, ४, ५ इन नक्षत्रों में क्रम से शोक, लाभ, रोग, दुःख और लाभ फल होता है ॥ २०० ॥

अग्निदाहचक्र—

शोक	लाभ	रोग	दुःख	लाभ	फल
७	५	७	४	५	मंगल के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र का

इष्टिकानिस्सारणचक्रम्—

त्रिकं पञ्च त्रिकं चैव सप्त पञ्च चतुष्टयम्।
शुभाऽशुभं चेष्टिकानां फलं निःसारणे बुधात् ॥२०१॥

बुध के नक्षत्र से ईंट के निकालने में ३, ५, ३, ७, ५, ४ शुभ अशुभ क्रम से फल है ॥ २०१ ॥

इष्टिकानिस्सारणचक्र—

शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	फल
३	५	३	७	५	४	बुध के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र का

इति श्रीमज्ज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणि-श्रीछत्रधरसूरिसूनु-दैवज्ञभूषण मीमातृ-
प्रसादपाण्डेयसंगृहीतायां 'विजयलक्ष्मी' नाम्नि सोदाहरणभाषा-
टीकासमन्वितायां कूपाराममीमांसायां दकार्गल-
(कूप) प्रकरणम् ।

अथ बृहत्-संहितोक्तवृक्षायुर्वेदाध्यायः ।

तत्रादौ तत्प्रयोजनमाह—

प्रान्तच्छाया विनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशया ।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥

वापी, कूप, तडाग आदि जलाशयों के पास छायादार वृक्षों के बिना चित्त प्रसन्न नहीं होता इससे जलाशयों के समीप वाटिका लगाना चाहिये ॥ १ ॥

तत्र भूलक्षणमाह—

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।
पुष्पितांस्तांश्च मृद्नीयात् कर्मैतत् प्रथमं भुवः ॥ २ ॥

कोमल भूमि सभी वृक्ष के लिये लाभदायक है । जहाँ वाटिका लगाना हो प्रथम वहाँ पर तिल लगाना चाहिये, ये तिल जब पुष्प युत हो जाय तो उनका मर्दन वहीं करदे इससे वह भूमि कोमल और वाटिका लगाने योग्य हो जाती है । यह कर्म वाटिका लगाने के पहले कर देना चाहिये ॥ २ ॥

अधुना प्रथमरोप्यान् वृक्षानाह—

अरिष्टा-ऽशोक-पुन्नाग-शिरीषा स-प्रियङ्गवः ।
माङ्गल्या पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥ ३ ॥

अरिष्ट, अशोक, पुन्नाग, शिरीष तथा प्रियङ्गु वृक्ष वाटिका अथवा गृह में लगाने, से मङ्गल होता है ॥ ३ ॥

अधुना काण्डरोपण्यां विधानमाह—

पनसा-ऽशोक-कदली-जम्बू-लकुच-दाडिमाः ।
द्राक्षापाली-व्रताश्चैव बीजपुरा-ऽतिमुक्तकाः ॥ ४ ॥
एते द्रुमा काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः ।
मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीया परं ततः ॥ ५ ॥

पनस (कटहर), अशोक, कदली, जामुन, लकुच, दाडिम, द्राक्षा, पाली, वत, बीजपुर, अतिमुक्तक इन वृक्षों की शाखा को गोमय से लीप कर लगाना चाहिये। इन वृक्षों के मूल काट कर किसी विजातीय वृक्ष के शाखा में बाँधना अथवा विजातीय वृक्ष के मूल को इन वृक्षों के शाखा में बाँधने की क्रिया को कलम करना कहते हैं। इसमें गोबर और मिट्टी के संमिश्रण की आवश्यकता पड़ती है ॥४-५॥

अथ वृक्षाणां कालनियमार्थमाह—

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।
वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथा दिक्स्थान् प्ररोपयेत् ॥ ६ ॥

जिस वृक्ष में लता और अङ्कुर न हों उन्हें शिशिर, जिसमें शाखा बहुत अधिक हों ऐसे वृक्षों को वर्षा ऋतु में लगाना चाहिये। पाठान्तर से वर्षा ऋतु के मध्य में भी कहा जाता है। और वृक्षों को क्रम से पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में क्रमशः लगावे ॥ ६ ॥

अन्यदप्याह—

घृतोशीर-तिल-क्षौद्र-विडङ्ग-क्षीर-गोमयैः ।
आमलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥

घी, खश, तिल, मधु, विडङ्क, गौका दुग्ध, गोबर इनको जड़ से शाखा तक लगा कर इन्हें एक स्थान (देश) से दूसरे स्थान (देश) में लगाना चाहिये ॥७॥

रोपणप्रकारमाह—

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानाऽनुलेपनैः ।
रोपयेद्रोपितश्चैव पत्त्रैस्तैरेव जायते ॥ ८ ॥

वृक्ष को रोपने (लगाने) से पहिले पवित्र होकर और स्नान, चन्दन से वृक्ष का पूजन करके तब वृक्ष लगाना चाहिये, ऐसा करने से जो वृक्ष में पत्रादि निकलते हैं वे सूखते नहीं और वृक्ष के साथ वृद्धि करते रहते हैं ॥ ८ ॥

रोपितानां सेचनविधानमाह—

सायं प्रातश्च घर्मर्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥ ९ ॥

लगाये गये वृक्षों को ग्रीष्म काल में सायं प्रातः, शीत काल में दिन के मध्य में, और वर्षा ऋतु में जब कभी भूमि सूख जाय उसी समय सींचना उत्तम होता है ॥ ९ ॥

अथाऽनूपजान् वृक्षानाह—

जम्बू-वेतस-वानीर-कदम्बोदुम्बराऽर्जुनाः ।
बीजपूरक-मृद्वीका-लकुचाश्च सदाणिमाः ॥ १० ॥
वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।
तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोडशानूपजाः स्मृताः ॥ ११ ॥

जामुन, वेतस (बेंत), वानीर, कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बीजपूरक, द्राक्षा, लकुच, दाडिम, वञ्जुल, नक्तमाल, तिलक, पनस (कटहर), तिमिर और अम्रातक आदि षोडश वृक्ष बहुत जल वाले होते हैं अतः इनमें एक साथ विशेष जल देने की आवश्यकता नहीं होती ॥ १०-११ ॥

रोपितानां वृक्षाणां किं प्रमाणान्तरं कार्यमित्याह—

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् ।

स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥१२॥

वृक्ष लगाने के लिये एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की दूरी २० हाथ की रहे यह उत्तम प्रकार है और १६ हाथ की दूरी यह मध्यम और १२ हाथ की दूरी यह निकृष्ट प्रमाण कहा गया है ॥ १२ ॥

तदर्थमाह—

अभ्यातजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।
मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग् यच्छन्ति पीडिताः ॥१३॥

वृक्ष आपस में स्पर्श करने से, और जिनका जड़ परस्पर मिल जाता है वे फल नहीं देते, इससे वृक्ष समीप नहीं लगाना चाहिये ॥ १३ ॥

तेषां रोगज्ञानमाह—

शीत-वात-तपै रोगो जायते पाण्डुपत्त्रता ।
अवृद्धिश्च प्रबालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥१४॥

शीत वायु धूप से वृक्षों को रोग पैदा हो जाता है, इसका पहिचान यह है कि पत्र पीले पड़ जाते हैं, प्रबाल अंकुर का ह्रास होने लगता है और रस में स्राव पैदा होने लगता है। इन चिन्हों से वृक्ष को रोगी जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ तेषां चिकित्सितमाह—

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।
विडङ्ग-घृत-पङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥१५॥

रोगी वृक्षों की चिकित्सा करने के लिये जिन अङ्गों में रोग हुआ हो उसे काट देना चाहिये और घी तथा पङ्क को मिला कर अच्छी तरह लगा देना चाहिये। दूध से मिले जल से चींचने से उसका रोग दूर हो जाता है ॥१५॥

फलनाशचिकित्सितमाह—

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये ॥१६॥

वृक्षों के फल जब नाश होने लगें तो उसे उरद मूंग तिल जव सब को मिला

कर जल के साथ क्वाथ करना और जब वह ठण्डा हो जाय तो उस जल में दुग्ध मिलाकर सींचने से फूल फल की वृद्धि होती है ॥१६॥

वृद्ध्यर्थंप्रयोगमाह—

अविकाशजकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम्।
सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह ॥१७॥
सप्तरात्रोषितै रेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः।
वल्ली-गुल्म-लतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥१८॥

भेंड बकरी का मलमूत्र एक आढक तिल एक आढक सत्तू एक प्रस्थ जल एक द्रोण गोमांस १ तुला ये सब मिला कर सप्त रात्रि पर्यन्त रखने के बाद वृक्ष में सेक करे तो बल्ली लता और फल की विशेष वृद्धि होती है। यह मात्रा एक वृक्ष के लिये है ॥१७-१८॥

अथ बीजानां वापनविधानमाह—

वासराणि दशदुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम्।
गोमयेन बहुशो विरुक्षितं क्रोड़मार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥१९॥
मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ।
क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥२०॥

जिस किसी वृक्ष का बीज लगाना हो प्रथम हाथ में घृत लगाकर उसी हाथ से बीज दूध में डाल दे, इस प्रकार दश दिन तक यह क्रिया बराबर करे, बाद बीज को गोमय से खूब मर्दन करे, इसके उपरान्त सूकर और मृग मांस का धूप दिखाकर उसमें सूकर और मृगमांस का मिश्रण करके उस बीज को उसी स्थान में बोवें जहाँ तिल मर्दन किया गया हो बाद को दुग्ध और जल से सींचते रहने से पुष्प अच्छी तरह लग जाता है ॥१९-२०॥

तिन्तिडीविधानमाह—

तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं ब्रीहि-माष-तिलचूर्ण-सक्तुभिः।
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥२१॥

तिन्तिडी (इमली) के बीज चूर्ण को व्रीहि चूर्ण माष चूर्ण और तिल चूर्ण को सत्तू और दुर्गन्ध युक्त मांस में मिला कर हल्दी का धूप देने से वल्लरी शाखा करती है। अपिशब्द देने से और वृक्ष भी वल्लरी (शाखा) कारक हो जाय तो कोई सन्देह नहीं ॥२१॥

अधुना कपित्थबीजरोपणमाह—

कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्यामाऽतिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥२२॥

क्षीरे शृते चाऽप्यनया सुशीते,
तालाशतं स्थाप्य कपित्थबीजम् ।
दिने दिने शोषितमर्कपादै-,
र्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥२३॥

हस्तायतं तत् द्विगुणं गभीरं
खात्वा वटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ।
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत्,-
प्रलेपयेद् भस्मसमन्वितेन ॥२४॥

चूर्णीकृतैर्माष–तिलै–र्यवैश्च, प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ।
मत्स्याऽऽमिषाम्भस्सहितं च हन्याद्यावदघनत्वं समुपागतं तत्॥२५॥

उप्तं च बीजं चतुरङ्गुलाधो
मत्स्याऽम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् ।
वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला
विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥२६॥

कपित्थ बीज में वल्लरी पैदा करने का विधान इस प्रकार कहा गया है। सारिवा (आस्फोत), धात्री, धव वृक्ष और वासिका वृक्ष इन चारों वृक्षों का

मूल लेना तथा वेतस वृक्ष समूल पत्र के सूर्य वल्ली, श्यामा और अतिमुक्त वृक्ष का मूल इनको अष्टमूली कहा जाता है। अष्टमूली को दूध के साथ क्वाथ बनाना और ठंढा करके उसमें कईत का बीज छोड़ दे। शतवार करतल बजाने में जितना समय लगे उसे उतने देर तक क्वाथ में रक्खे। इसके बाद उसे निकालकर सूर्यरश्मि (धूप) में सुखा दे और यह क्रिया १ मास (३० दिन तक) नित्य करे, इसके बाद रोपण करे। रोपण करने से पहले १ हाथ लम्बा चौड़ा और २ हाथ गहरा गर्त (गड्ढा) खोदकर दुग्ध मिश्रित जल से भर दे, सूख जाने पर उसमें अग्नि जला दे और इसके बाद उसमें मधु घृत का लेप कर दे। लेप करने के बाद उसमें चार अङ्गुल तक मृत्तिका भर दे फिर इसके बाद उरद तिल तथा जव का चूर्ण छोड़े। पुनः चार अङ्गुल तक मृत्तिका छोड़े और उरद तिल जव के तिल के चूर्ण को बार बार इसी क्रम से छोड़े जब तक कि गर्त्त भर न जाय, यही क्रम करता जाय। इसके बाद मछली के मांस से युक्त जल को छोड़कर उस गर्त्त को पीट दे और पीटने से खूब कड़ा करदे, बाद उसी स्थान पर चार अङ्गुल नीचे बीज का रोपण करे और मछली के मांस युक्त जल से सींच दे तो शीघ्र ही उत्तम अङ्कुर और वल्लरी पैदा होती है। यह शाखा आश्चर्यजनक होती है और मण्डप को आच्छादन कर लेती है॥ २२-२६॥

अथाऽन्येषां रोपणमाह—

शतशोऽङ्कोलसम्भूतफलकल्केन भावितम्।
एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥२७॥
वापितं करकोन्मिश्रभूदितत्क्षणजन्मकम्।
फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ? ॥२८॥

अन्य वृक्षों के लगाने का प्रकारः—यदि किसी अन्य वृक्ष का बीज लगाना हो तो उसके बीज को अङ्कोल के कल्क से १०० बार भावना देकर अथवा पिस्ता के तेल से ही १०० बार भावना देकर पुनः उस बीज को श्लेषात्मक वृक्ष के फल के कल्क या तेल की ही भावना देकर लगाने से उसी समय शाखा और लता फल युक्त हो जाती है॥ २२-२८॥

अथ श्लेष्मातकरोपणमाह—

श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत प्राज्ञः ।
अङ्कोलविज्जलाद्भिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥२९॥
माहिषगोमयघृष्टान्यस्यकरीषे च तानि निक्षिप्य ।
करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना फलकराणि ॥३०॥

बुद्धिमान मनुष्य श्लेषात्मक (लिसोरा) के बीज का छिलका उतार कर उसे पिस्ता के बीज तथा फल का भावना देकर सुखाकर, और उसे सात बार भावना देकर सुखा कर बाद में बीज को महिष (भैंस) के गोबर में घिसे, फिर उसे गोबर में गाड़ दे । जब कभी पत्थर (बनौली) गिरे तो उसे निकाल कर जहाँ पत्थर पड़ा हो वहाँ ही बो दे । ऐसा करने से बीज एक ही दिन में फलने लगता है ॥ २९-३० ॥

वृक्षाणां रोपणनक्षत्राण्याह—

ध्रुव-मृदु-मूल-विशाखागुरुभे श्रवणस्तथाऽश्विनी हस्तः ।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥३१॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त ये नक्षत्र दिव्यदृष्टि युक्त ऋषिगण वृक्ष लगाने को कहा है ॥ ३१ ॥

इति श्रीज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणि-श्रीछत्रधरसूरिसूनु-दैवज्ञभूषण-
श्रीमातृप्रसादपाण्डेयसरयूपारीण-श्रौत-स्मार्तसंगृहीतायां
विजयलक्ष्मीटीकासमन्वितायां वृक्षायुर्वेदाध्याय-
प्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ प्रतिष्ठामुहूर्ताः ।

(रामोक्तजलाशयारामसुरप्रतिष्ठामुहूर्ताः)

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीव-शशाङ्क-शुक्रे ।
दृश्ये मृदु-क्षिप्र-चरे ध्रुवे स्यात् पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥१॥
रिक्तारवर्ज्ये दिवसेऽतिशस्ताः शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।
व्यन्त्याऽष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्ये घटे को युवतौ च विष्णुः ॥२॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ।
पुष्ये ग्रहा विघ्नप-यक्ष-सर्प-भूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥३॥

उत्तरायण सूर्य में बृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्र के उदय में मृदु (मृ. रे. चि. अनु.), क्षिप्र (ह. अश्वि. पुष्य. अभिजित्), चर (स्वा. पुन. श्र. ध. श.) ध्रुव (उ. ३ रो.) इन नक्षत्रों में शुक्लपक्ष में या अपने नक्षत्र में तिथि मुहूर्त में, रिक्ता तिथि (४-९-१४) मंगलवार को त्यागकर शेष तिथि वारों में, चन्द्रमा और पापग्रह ३।११।६ में हों, ८।१२ में शुभग्रह न हों तो जलाशय (कूप, वापी आदि) आराम (बाग) और देवताओं की प्रतिष्ठा करना शुभ है । प्रतिष्ठा सिंह में सूर्य, कुम्भ में ब्रह्मा, कन्या में विष्णु, मिथुन में शङ्कर, द्विस्वभाव लग्न में चर लग्न में क्षुद्र देवताओं का, और स्थिर में सभी का, पुष्य में ग्रहों का, रेवती में गणेश यक्ष, सर्प, भूतादिकों का और श्रवण में जिन की स्थापना शुभ होती है ॥ १-३ ॥

प्रतिष्ठायां मासफलम्—

पौषे राजविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु सम्पदः ।
फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रे मासि शुभावहाः ॥४॥
अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहः ।
आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः ॥५॥
सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा ।

भाद्रे सन्मानहानिः स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा ॥६॥
कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथैव च ।
सर्वेषामेव वर्णानां वसन्ते शोभनो भवेत् ॥७॥

पौष में प्रतिष्ठा करने से राज्यवृद्धि, माघ में सम्पत्ति, फाल्गुन में द्रव्य, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सुख, ज्येष्ठ में जय, आषाढ़ में यजमान का नाश, श्रावण में राज्य तथा देश की हानि यह सौरमान से जानिये। भाद्रपद में मान हानि, आश्विन में राज्यहानि, कार्तिक में और मार्गशीर्ष में शत्रु की वृद्धि होती है। सब वर्णों के लिये वसन्त ऋतु में स्थापना करना उत्तम होता है। मातृ-भैरव, नक नृसिंह वामन और दुर्गाजी की स्थापना दक्षिणायन में होती है, शिव की श्रावण में, जगदम्बिका की आश्विन में, और मार्गशीर्ष में नारायण की स्थापना होना वास्तुसारणी पेज १३२ में लिखा है ॥ ४–७ ॥

प्रतिष्ठायां वर्णपरत्वेन तिथिनिर्णयः—

ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चाऽतिशोभना ।
क्षत्रियाणां पञ्चमी तु सप्तमी शोभनप्रदा ॥ ८ ॥
वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणां च त्रयोदशी ।

ब्राह्मणों को द्वितीया तृतीया तिथि उत्तम है, क्षत्रियों को पञ्चमी, सप्तमी तिथि उत्तम है, वैश्यों को दशमी तिथि और शूद्रों को त्रयोदशी तिथि में प्रतिष्ठा करना शुभ है ॥ ८ ॥

वारफलं मुहूर्तगणपतौ—

प्रतिष्ठोग्रा तथा क्षेमा वह्निदा वरदा दृढा ।
आनन्ददायिनी कन्यस्थायिन्यर्कादिवासरे ॥ ९ ॥

रविवार को प्रतिष्ठा करने से उग्र, चन्द्रवार को कल्याण, मंगलवार को अग्निभय, बुधवार को वर देने वाली, गुरुवार को दृढ, शुक्रवार को कल्याण देने वाली और शनिवार को कल्पपर्यन्त रहने वाली होती है ॥ ९ ॥

जातिभेदेन वारफलं बृहस्पतिः—

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरु-शुक्रयोः ।

वारौ दिवाकरेन्दोश्च क्षत्रियाणां शुभावहौ ॥१०॥
वैश्यानां बुधवारे स्यात् सुरसंस्थापने शुभः।
मन्दवारस्तु शूद्राणां प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥११॥
जीव-शुक्र-बुधानां च सर्वेषां शोभनावहाः।
पापग्रहाणां वारश्च बलिनः शुभदा स्मृता ॥१२॥

ब्राह्मणों को स्थापना करने में बृहस्पति, शुक्रवार उत्तम है। क्षत्रियों के सूर्य चन्द्रवार शुभदायक है, वैश्यों को बुधवार उत्तम है, शनिवार शूद्रों को शुभ है, बृहस्पति, बुध, शुक्रवार सब जातियों को देवस्थापना में उत्तम है। पापग्रहों का वार यदि बलवान् हो तो शुभ है ॥ १०-१२ ॥

जातिभेदेन नक्षत्राण्याह—

उत्तरात्रिकपुष्याश्च ब्राह्मणानां शुभावहाः।
श्रवणं हस्त-मूले च क्षत्रिये शुभदा स्मृताः ॥१३॥
वैश्यानां स्वातिमैत्रे च पौष्णे चैव शुभावहाः।
शूद्राणामश्विनी श्रेष्ठा देवतास्थापने सदा ॥१४॥

ब्राह्मण को तीनों उत्तरा, पुष्य, क्षत्रिय को श्रवण, हस्त, मूल, वैश्य को स्वाती, अनुराधा, रेवती, और शूद्र को अश्विनी नक्षत्र में देव स्थापना करना शुभ लिखा है ॥ १३-१४ ॥

ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां शोभनाः स्थिर-राशयः।
उभयो राशयोर्वैश्य-शूद्राणां शोभना स्मृताः ॥१५॥

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को प्रतिष्ठा में स्थिर राशि और चर द्विस्वभाव राशि, वैश्य के लिये शुभ है ॥ १५ ॥

चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने।
शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ॥१६॥
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः।

राशिस्वभावजं हित्वा फलं ग्रहजमाश्रयेत् ॥१७॥

चन्द्रमा तथा तारा बलवान् हो तो शुभ दिन के पूर्वार्ध में शुभग्रह का लग्न नवांश (वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धन, मीन) हो तो प्रतिष्ठा शुभ है। परन्तु कर्ता के राशि लग्न से अष्टम स्थान का वह राशि नवांश न हो तथा शुभग्रह की योग दृष्टि से वह राशि अपने स्वभाव को त्याग कर ग्रह से उत्पन्न फल को देती हो ॥ १६-१७ ॥

देवस्थापने देवमुखनियमो वास्तुराजवल्लभे—

ब्रह्मा-विष्णु-शिवेन्द्र-भास्कर-ग्रहा पूरापरस्या शुभाः,
प्रोक्ताः सर्वदिशामुखा शिवजिना विष्णुविधाता तथा।
चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो,
देवो दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत् ॥१८॥

ब्रह्मा, बिष्णु रुद्र, इन्द्र, स्वामिकार्तिक को पूर्व पश्चिम मुख, शिव जिन तथा ब्रह्मा, विष्णु का मुख सब दिशाओं में कर सकते हैं। चामुण्डा, ग्रहमातृगण, कुबेर, गणेश और भैरव का दक्षिण मुख, तथा हनुमान जी का नैऋत्य कोण में मुख रहना शुभ है ॥ १८ ॥

प्रतिष्ठादोषमाह—

हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम्।
श्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥१९॥

द्रव्य हीन प्रतिष्ठा यजमान का, मन्त्रहीन प्रतिष्ठा ऋत्विज का, लक्षणहीन प्रतिष्ठा लक्ष्मी का नाश करती है, इससे प्रतिष्ठा के समान शत्रु नहीं है। इससे यजमान को उचित है कि उत्तम मन्त्रज्ञ प्रतिष्ठित विद्वान को बुलाकर प्रतिष्ठा करावे, द्रव्य का व्यय उचित करे तो शुभ फल होता है ॥ १९ ॥

श्रीमज्ज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणिश्रीछत्रधरसूनुदैवज्ञभूषणश्रीमातृप्रसादपाण्डेय-
सरयूपारीणश्रौतस्मार्तगुम्फितायां विजयलक्ष्मीटीकान्वितायां
कूपाराममीमांसायां प्रतिष्ठाप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

पं० श्रीसीतारामझाकृतपुस्तकानि—

अवकहड़ाचक्रसहित—व्यवहारविवेक ।।)

अहिबलचक्र—भा० टी० ।) केरलप्रश्नसंग्रह—भा० टी० ।≡)

केशवीयजातकपद्धति—सं० टी०, भा० टी० २।।।)

खेटकौतुक—भा० टी० ।=) गणितचन्द्रिका ।।=)

गणितसोपान— ।=) गर्गमनोरमा—भा० टी० ≡)

ग्रहलाघव—सं० टी०, भा० टी० ३।।)

गोलपरिभाषा—ज्याक्षेत्रविचारसहित ।)

जातकालङ्कार—सं० टी०, भा० टी० रफ ।।=) ग्लेज ।।।)

जैमिनिसूत्र—सं० टी०, भा० टी० १।।)

ताजिकनीलकण्ठी—सं० टी०, भा० टी० ३।।)

धराचक्र—भा० टी० ।–)

नाडिदत्तपञ्चविंशतिका—भा० टी० =) पद्मकोष—भा० टी० ।=)

बृहत्पाराशरहोरा—सम्पूर्ण भा० टी० रफ १२), ग्लेज १५)

भावप्रकाशज्यौतिष—भा० टी० १।) भावफलाध्याय—भा०टी० ।)

मुहूर्तचिन्तामणि—सान्वय भा० टी० ३)

मुहूर्तमार्तण्ड—सं० टी०, भा० टी० २।।)

रेखागणित—षष्ठाध्याय ।=)

लग्नवाराही—भा० टी० =) लघुजातक—सं० टी०, भा० टी० १।।)

लघुपाराशरी—मध्यपाराशरी, सोदाहरण, भा० टी० २।)

लीलावती—सं० टी०, भा० टी० ३)

विवाहवृन्दावन—सं० टी०, भाषा टीका २।।)

शीघ्रबोध—भा० टी० ।।।) षट्पञ्चाशिका—सं०टी०, भा०टी० ।।)

सारावली—भा० टी० ८)

सूर्यसिद्धान्त—सं० टी० ४) स्त्रीजातक—भा० टी० १।)

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, बनारस-१